विषय–सूची

प्रह्लाद

(हिन्दी-विभाग की त्रैमासिक पत्रिका)

वर्ष—१६८१ (जनवरी से मार्च तक) अंक—१

श्रीसाहित्य-स्तुति

छप्पय

प्रतिभा उभय प्रकार अवनि आधार बारि बर।
प्रतिपादक रमनीय-अर्थ-पद मूल मनोहर॥
गुन-गुंफित त्रय बृत्ति साख सब रसिक रिझावन।
बृत्त-ब्रात बहु पात, सुलच्छन सुमन सुहावन॥

फल सरस-भाव-ध्वनि चित्र पुनि माली मुनि-कवि आदि अरु।
भरतादि ब्यास तुलसी, जयतु सुख-सर्मद साहित्य-तरु॥

(अर्थात् सहजा (ईश्वरदत्त या पूर्व संस्कार-जन्य स्वयमेव प्राप्त साहित्य बीज रूप संस्कार) एवं उत्पाद्या (निपुणता और अभ्यास द्वारा स्वार्जित) ये दो प्रकार की प्रतिभाएं (शक्ति) ही आधार रूप पृथ्वी एवं उत्तम जल हैं। "रमणीयार्थ-प्रतिपादकः शब्दः" (रमणीय अर्थ देने वाला शब्द) मनोहर मूल है। माधुर्यादि गुणो से ग्रथित उपनागरिकादि तीनो वृत्तियां सब साहित्य-रसिको को प्रसन्न करने वाली शाखाएं हैं। नाना प्रकार के छंदों के समूह अनेक पत्र हैं। शुभ लक्षण मनोहर पुष्प हैं। स्थायी आदि चारो भावों सहित, शृंगारादि नवों रसों से युक्त ध्वनि (व्यंग्य) एवं चित्र (अलंकार) फल हैं और साहित्य-निर्माता मुनि आदि-कवि (वाल्मीकि), भगवान वेदव्यास एवं गोस्वामी तुलसीदास माली हैं। इस प्रकार का जो साहित्य-वृक्ष (सांसारिक) सुख तथा शर्म (परमशांति) दायक है, उसकी जय हो। यहां वस्तुनिर्देशात्मक मंगल है) (भारती-भूषण)

आर्यभाषा हिन्दी के प्रति हमारा दायित्व

लेखक—डा० भगवानदेव पाण्डेय, एम ए , पी-एच.डी
प्रवक्ता, हिन्दी-विभाग

जो भाषा थोडे बहुत अंशो में पूरे देश मे बोली एव समझी जाती है वह अपने इस गुण के कारण राष्ट्रभाषा होती है। भारतवर्ष मे मध्यप्रदेश की भाषाए संस्कृत, पालि, प्राकृत तथा हिन्दी प्रत्येक काल मे सम्पूर्ण देश मे प्रयुक्त होती रही है। चाहे इसका कारण कुछ भी रहा हो पर भाषा के कारण यहा सास्कृतिक एकता सदैव बनी रही।

आज हिन्दी पूरे देश में समझी एवं बोली जाती है। हिन्दी की महत्ता को समझकर ही दक्षिण के आचार्यों—बल्लभाचार्य, विट्ठल, रामानुज, रामानन्द आदि; महाराष्ट्र के—नामदेव और ज्ञानेश्वर; गुजरात के—नरसी मेहता, राजस्थान के—दादू और रज्जब; पंजाब के—नानक आदि, असम के—शंकरदेव; बंगाल के चैतन्य महाप्रभु और उत्तरी एवं दक्षिणी भारत के सूफी सन्तो ने हिन्दी को अपके धर्म, सांस्कृतिक प्रचार और साहित्य का माध्यम बनाया था। ब्लाकमैन ने अपनी खोज के आधार पर 'कलकत्ता रिव्यू' (१८७१) मे लिखा था कि मुगल बादशाहों के शासन-काल में ही नही इससे पहले भी सभी सरकारी कागज़ात हिन्दी मे रखे जाते थे। दिनेशचन्द्र सेन (हिस्ट्री आफ़ बंगाली लैंग्वेज ऐण्ड लिटरेचर, पृ०६००) ने लिखा है—'दिल्ली के मुसलमान शाहंशाह के एकच्छत्र शासन मे हिन्दी सारे भारत की सामान्य भाषा हो गई थी।' कम्पनी सरकार ने फ़ोर्ट विलियम कालेज की स्थापना शासकीय कार्य के लिए हिन्दुस्तानी सिखाने के लिए ही की थी। एच०टी० कोलब्रुक ने अपनी पुस्तक 'एशियाटिक रिसर्च' में स्वीकार किया है कि जिस भाषा का व्यवहार भारत के प्रत्येक प्रान्त में लोग थोड़ा बहुत अवश्य समझ लेते है, वह हिन्दी है।

पिछली शताब्दियों में जो आन्दोलन हुए है उनमें हिन्दी की अनिवार्यता पर सभी ने बल दिया है। राजाराम मोहन राय ने समग्र देश की एकता के लिए हिन्दी को अनिवार्य बताया था तो ब्राह्म समाज के नेता केशवचन्द्र ने भारतीय एकता के लिए एक भाषा के व्यवहार पर बल देते हुए हिन्दी को उचित ठहराया था।

आर्यसमाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द ने इस 'आर्य भाषा' को सर्वात्मना देशोन्नति का मुख्य आधार माना था। लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने सभी भारतवासियों से हिन्दी सीखने का आग्रह किया था, तो वीरसावरकर, गोखले, काका कालेलकर आदि हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनवाने के लिए सतत प्रयत्नशील रहे। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी तो-'मेरे लिए हिन्दी का प्रश्न स्वराज्य का प्रश्न है' कहते थे। सरदार पटेल ने कांग्रेस के कराची-अधिवेशन मे अध्यक्ष-पद से अपना अभिभाषण पहले हिन्दी मे पढा। बंकिमचन्द्र चटर्जी ने हिन्दी को विभिन्न प्रदेशों के मध्य मे ऐक्य-बन्धन-संस्थापन मे समर्थ कहा था और महर्षि अरविन्द ने हिन्दी के माध्यम से प्रान्तीय भेदभाव नष्ट करने को कहा था। नेताजी सुभाष चन्द्र बोस ने १८२६ के कांग्रेस-अधिवेशन मे कहा था कि प्रान्तीय ईर्ष्या-द्वेष को दूर करने मे हिन्दी से ही सबसे अधिक सहायता मिल सकती है। सी० राजगोपालाचारी, सर सी०पी० रामास्वामी अय्यर तथा जस्टिस कृष्ण स्वामी अय्यर ने हिन्दी को ही उत्तर और दक्षिण को जोड़ने वाली समर्थ भाषा कहा है।

राष्ट्रीय चेतना के विकास के साथ ही स्वभाषा को राजपद दिलाने की मांग उठाते हुए निजभाषा के प्रवर्तक भारतेन्दु जी ने खेद प्रगट करते हुए लिखा था— "सभी सभ्य देशो की अदालतो मे उनके नागरिको की बोली और लिपि का प्रयोग किया जाता है। यही ऐसा देश है जहां अदालती भाषा न तो शासको की मातृ-भाषा है और न प्रजा की।" १४ सितम्बर १८४८ को स्वाधीन भारत के संविधान मे हिन्दी को राजभाषा और देवनागरी को राजलिपि की मान्यता प्रदान की गई थी लेकिन आजतक संविधान के पन्नो मे यह काले अक्षरो मे ही अंकित है। आज अंग्रेजी का विकास पहले से बहुत अधिक हुआ है। अंग्रेजी शासन-काल मे अंग्रेजी पढ़ने वालो की संख्या इतनी नही थी जितनी आज है।

आज तक शासक दल वाक्जाल मे फंसाकर यही तसल्ली देता आ रहा है कि अंग्रेजी संसार की सबसे बड़ी भाषा है और हमारा विकास इसके पढने मे ही है। यह भ्रामक प्रचार है और उन मुट्ठीभर सरकारी नीति को चलाने वाले प्रशासकों के दिमाग की उपज है जो यह देखते हैं कि अगर अंग्रेजी का प्रचलन कम हुआ तो मेरे अस्तित्व पर खतरा उत्पन्न हो जायगा। इसीलिए वे राष्ट्रभाषा-

सम्बन्धी प्रश्न को राजनीतिक रंग देकर तथा उत्तर दक्षिण की भावना को उभाड़कर भाषा की समस्या को खटाई मे डाले हुए हैं। कुछ लोग तो यह भी कहते सुने गये है कि—अंग्रेजी संसार की भाषाओ मे सबसे बड़ी है, अंग्रेजी विश्वज्ञान की खिड़की है। वे अंग्रेजी पढ़ने से हममेर ाष्ट्रीयता और स्वाधीनता की भावना जगी, देशी भाषाओ के अपनाने से देश टुकडे-टुकड़े हो जायगा, राष्ट्रीय, एकता अथवा मतैक्य को बनाए रखने के लिए अंग्रेजी एकमात्र साधन है, अंग्रेजी की सहायता के बिना भारतीय भाषाओ का विकास संभव नही है। इसका उत्तर यह है कि अंग्रेजी संसार की सबसे बड़ी भाषा नही है। विश्व मे सबसे अधिक चीनी बोलने वालो की संख्या है, अगर अंग्रेजी ही केवल विश्वज्ञान की खिडकी है तो रूसी, चीनी ,जर्मन, फ्रेंच, आदि को बोलने वाले फिर विश्वज्ञान मे अग्रणी क्यो है ? जब हमारा देश सोने की चिड़िया के नाम से पुकारा जाता था, उस अंग्रेजी के ज्ञाता कितने थे ? व्याकरण का जन्म अंग्रेजो के राज्य में न होकर हमारे देश में क्यो हुआ ? अगर अंग्रेजी पढने से हमारे मन में राष्ट्रीयता और स्वाधीनता की भावना जगी तो फिर हमारे देश मे राष्ट्रीयता एवं स्वाधीनता की लड़ाई का इतिहास आदि काल से ही क्यो मिलने लगता है ? किसने जगाई थी पुरु, राणाप्रताप, शिवाजी आदि महापुरुषो मे यह स्वाधीनता की भावना ? अंग्रेजी-शिक्षा ने धूर्तता, मक्कारी आदि की वृद्धि ही अधिक की है।

अत इस प्रकार के वक्तव्य भ्रामक हैं। ऐसे भ्रामक प्रचारको को ही लक्ष्य करके गुरुदेव टैगोर ने कहा था—'हमने अपनी आखे खोलकर चश्मे लगा लिए है।' आज के ये तथाकथित गाधीवादी गाधी जी के भाषा-सम्बन्धी विचारो की अवहेलना क्यो करते है ? गाधी जी के ये विचार कि—"आज की अंग्रेज़ी शिक्षा ने हमे निकम्मा ओर नक़लची बना दिया है" क्यो भूलते जा रहे है ?

वास्तव मे भाषा-सम्बन्धी संघर्ष का बीज हममे अंग्रेजो ने बाइबिल मे बेबल के मीनार की उस कहानी के आधार पर ही बोया है जिसमें कहा गया है कि आदम के बेटो ने आकाश तक पहुँचने के लिए एक बहुत बडा मीनार बनाना चाहा। ईश्वर ने सोचा कि ये लोग स्वर्ग तक पहुँचकर मेरी बराबरी करने लगेगे। इन लोगो की भाषा एक थी और वे मिल-जुलकर मीनार बनाते हुए ऊपर चढते चले जा रहे थे। ईश्वर ने उन्हे तितर-बितर करने के लिए भिन्न-भिन्न भाषाएं दे दी जिससे वे एक-दूसरे की भाषा न समझने के कारण आपस में ही लड़ने लगे, परिणामस्वरूप मीनार ही टूट गई। इस कथा से शिक्षा ग्रहण कर अंग्रेज बहादुरो ने उर्दू मुसलमानों की तथा हिन्दी हिन्दुओं की भाषा का बंटबारा करके हमारी एकता और अखण्डता को टुकडे-टुकड़े करके तथा आपस मे लड़ाकर 'बांटो तथा राज्य करो' की नीति से लाभ उठाते रहे और अपने जाने के साथ

अंग्रेजी की भी समस्या खड़ी करके एक नयी एवं घातक स्थिति का निर्माण करके हमे सदैव के लिए भाषायी संघर्ष मे ढकेलकर चले गए ।

आज भाषा की समस्या जटिल रूप मे सामने उपस्थित है। प्रत्येक क्षेत्र के लोग अपनी अलग-अलग भाषा को स्थापित कर रहे है। देश के गण्यमान्य जन-नायक भाषायी समस्या को नया ड्रामा पहनाकर प्रस्तुत कर रहे है। आज की स्थिति मे गुजरात के लोग गुजराती, पंजाब के लोग पंजाबी; राजस्थान के राजस्थानी, आसाम के आसामी आदि नई भाषायी विकट स्थितिया पैदा करने मे सलग्न है। ऐसी स्थिति मे हिन्दी, जिसे राष्ट्रभाषा का कागजी रूप दिया गया है, उपेक्षिता सी एक किनारे अपने दर्द को सीने में दगाए निश्चेष्ट पड़ी है तथा देश के नियामको की मुखापेक्षिणी बनकर इसी में सतुष्ट है—

न खुशी अच्छी, न मलाल अच्छा,
यार जिस हाल मे रखे, वह हाल अच्छा।

मेरा सभी राष्ट्रप्रेमियो से आग्रह है कि देश के व्यापक हित को ध्यान मे रखते हुए राष्ट्रभाषा हिन्दी के विकास पर बल दें। यदि एक विदेशी भाषा की प्रतिस्पर्द्धा में राष्ट्रभाषा के रूप में हम अपने देश को भाषा को देखना चाहते है तो हमे छोटी-छोटी बोलियो के विवाद मे उलझने के बजाय हिन्दी के पीछे एक-जुट होकर खड़ा होना होगा। भारत की समस्त भाषाए अपनी है ऐसा भाव हृदय मे धारण करके हमे अपने क्षेत्र की भाषा तथा राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति समान दायित्व का अनुभव करना होगा। जो लोग राष्ट्र को विकसित एवं समृद्ध बनाना चाहते है उन्हे यह जानना चाहिए कि हम कश्मीर से कन्याकुमारी तक सम्पर्क भाषा के रूप मे हिन्दी को अपनावे तभी हमारी एकता, अखण्डता एवं राष्ट्र का विकास सम्भव है।

गुरुदत्त विद्यार्थी

(१८६४—१८८६)

लेखक—श्रीमान् बलभद्र कुमार हूजा : कुलपति,
गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय

गुरुदत्त विद्यार्थी आर्यसमाज के क्षितिज में देदीप्यमान प्रकाश-पुंज के समान प्रकाशित हुये। वे २५ वर्ष ही जीवित रहे। उनका क्रियाशील जीवन केवल ६-७ वर्षों तक रहा किन्तु इस अल्प समयान्तराल में उन्होंने ऐसा प्रभाव उत्पन्न किया जिससे उन्हें अपार सम्मान तथा गौरव प्राप्त हुआ।

गुरुदत्त विद्यार्थी मुल्तान (जो अब पाकिस्तान में है) के निवासी थे। उनके पिता श्री रामकृष्ण स्कूल-अध्यापक तथा फारसी के विद्वान थे। गुरुदत्त विद्यार्थी का जन्म का नाम 'मूला' था, लेकिन उनकी आध्यात्मिक एवं धार्मिक वृत्तियों की ओर रुझान होने के कारण वे 'वैरागी कहलाते थे। १२ वर्ष की आयु में वे अपने पिता के साथ हरिद्वार आये, यहाँ स्वामी राधेश्याम ने उनका नाम 'गुरुदित्ता' रखा। बाद में 'गुरुदित्ता' ने अपने आपको 'गुरुदत्त' कहलाना पसन्द किया।

१७ वर्ष की आयु में गुरुदत्त ने मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण की तथा सम्पूर्ण पंजाब प्रान्त में योग्यता क्रम से उनका पांचवा स्थान रहा। तत्पश्चात् उच्च शिक्षा हेतु उन्होंने गवर्नमेन्ट कालेज, लाहौर में प्रवेश लिया। कालेज में युवक गुरुदत्त अपनी बुद्धिमत्ता, परिश्रम तथा विद्वत्ता के लिए विख्यात थे। वे सच्चे अर्थो में एक विद्यार्थी थे। उन्होंने जे० एस० मिल, ब्रैडले, डार्विन, बेन्थन इत्यादि का गहन अध्ययन किया था। वे स्पेन्सर के विचारो से बहुत प्रभावित हुये। यह वह समय था जबकि योरोपीय विचारधारा को प्रगतिशीलता तथा वैज्ञानिक व्यावहारिकता के अनुसार ढाला जाता था। गुरुदत्त विद्यार्थी इस लहर से प्रभावित हुए बिना न रहे।

सन् १८८२ मे गुरुदत्त ने एक वादविवाद-क्लब की स्थापना की, जिसने लाला लाजपत राय को सदस्य बनने के लिये आकर्षित किया। कोई भी ऐसा विषय नही था जिस पर युवा वार्ताकारो की दृष्टि न पहुँची हो। उनकी वार्ताओ के विषय विशेष रूप से "वर्तमान वैज्ञानिक पर्यावरण मे सामाजिक तथा धार्मिक समस्याओ" पर आधारित होते थे।

युवक गुरुदत्त आर्य-समाज के प्रवाह मे उसी समय आ गये थे जबकि वे विद्यार्थी थे। उन्होने अपने कालेज के अन्य सहयोगियो के साथ एक पत्रिका निकालनी प्रारम्भ की जिसका नाम "दि रिजनरेटर आफ आर्य समाज" रखा। इस पत्रिका के माध्यम से उन्हे पंजाब मे स्वामी दयानन्द के अनुयायियो मे इतना सम्मान प्राप्त हुआ कि जब अक्टूबर १८८३ मे स्वामी दयानन्द जी की घातक कष्टावस्था का समाचार लाहौर पहुँचा तो दो व्यक्तियो के प्रतिनिधि मण्डल मे, गुरुदत्त विद्यार्थी को १६ वर्ष की छोटी आयु होते हुए भी लाला जीवनदास के साथ अजमेर जाकर स्वामी दयानन्द की सेवा सुश्रुषा करने के लिये चुना गया।

यह उल्लेखनीय है कि उस समय तक गुरुदत्त विद्यार्थी महर्षि दयानन्द के विचारो से बहुत अधिक प्रभावित हो चुके थे, किन्तु स्वामी जी की मृत्यु के ढग तथा परिस्थितियो ने गुरुदत्त के विचारो मे क्रान्ति उत्पन्न कर दी और उनको अपने कार्य का लक्ष्य प्रदान किया। भारत के कोने-कोने से अजमेर मे एकत्र हुए सभी आर्यसमाजियो को महर्षि दयानन्द ने अपने पीछे खडे होने के लिए कहा तथा इच्छा प्रकट की कि कमरे के सभी दरवाजो तथा खिडकियो को खोल दिया जाय। तब उन्होने वेदमन्त्र पढे तथा संस्कृत मे प्रार्थना की। तत्पश्चात् उन्होने पवित्र गायत्री मन्त्र का उच्चारण किया और कहा, "हे दयालु ! सर्वशक्तिमान् ! यह तेरी इच्छा है। तेरी इच्छा पूरी हो यह लीला समाप्त हुई।" तब स्वामी जी ने करवट बदली तथा दीर्घ प्राणायाम के पश्चात् प्राण त्याग दिये। गुरुदत्त विद्यार्थी ने देखा कि एक भगवान पर विश्वास करने वाला योगी किस प्रकार शान्त तथा स्थिर रहकर मृत्यु का आलिंगन कर सकता है। वे एक दृढ आस्तिक दयानन्द द्वारा प्रदर्शित सत्य के मार्ग के लिये कट्टरता तथा हठवादिता से लडने वाले, भारत के पुनर्निर्माण तथा मानव-जाति के उत्थान के लिये प्रतिबद्ध सैनिक के रूप मे लाहौर लौटे।

सन् १८८६ मे गुरुदत्त ने एम० ए० परीक्षा उत्तीर्ण की तथा वे पंजाब विश्वविद्यालय लाहौर में प्रथम स्थान पर रहे। इस समय तक दयानन्द के अनुयायी, जो ऋषि के ५६ वर्ष की अल्प आयु में उनकी असामयिक तथा अप्रत्याशित मृत्यु से अत्यधिक दुखी तथा अधीर थे, उस महान् नेता के सम्मान

मे एक स्मारक स्थापित करने के विषय में विचार-विमर्श कर रहे थे। स्वामी दयानन्द से पूर्व वेदों के अध्ययन पर ब्राह्मणो का एकाधिकार रहा था। शूद्रो और स्त्रियो को वैदिक मन्त्रो को पढने तथा सुनने तक का अधिकार नही था। वेदो की भाषा गूढ होने तथा उसकी अनेकार्थक व्याख्या होने के कारण वेद जनसाधारण के लिये प्रच्छन्न तथा अस्पष्ट बने रहे। परिणामस्वरूप जन-साधारण हर प्रकार की धोखाधड़ी तथा दिग्भ्रम का शिकार बना। दयानन्द ने उनके एकाधिकार को छिन्न-भिन्न कर दिया तथा यह घोषणा की कि सभी आर्यो का यह पवित्र कर्त्तव्य है कि वे न केवल स्वय वेद का अध्ययन करे अपितु दूसरो को भी वेदो का श्रवण तथा अध्ययन कराये। उन्होने यह आदेश दिया कि आर्यों को सदैव सत्य को स्वीकार करने तथा असत्य को अस्वीकार करने के लिये तैयार रहना चाहिए। आर्यो का यह पवित्र कर्त्तव्य है कि वे अज्ञान को विनष्ट करें तथा ज्ञान का प्रसार करें। उन्होंने कहा, "एक आर्य को न केवल अपनी व्यक्तिगत उन्नति से सन्तुष्ट रहना चाहिए अपितु वैयक्तिक उन्नति के अखण्ड कार्यक्रम के रूप में सर्वसाधारण की उन्नति के लिये प्रयत्न करना चाहिए।" जैसा कि सर्व-विदित है कि वे प्रबल रूप से मूर्तिपूजा के विरुद्ध थे तथा यह उनके कार्यक्रम का प्रमुख आधार था। उन्होने अपने भौतिक रूप की किसी भी रूप मे पूजा का निषेध कर दिया था अतः स्पस्ट रूप से महर्षि की मूर्ति का प्रश्न ही नही उठता था। उनके अनुयायियो ने उन्नति के कार्यक्रम का निर्णय लिया तथा लाहौर मे दयानन्द एग्लो वैदिक कालेज का स्थापना के लिये प्रयत्नशील हो गये।

गुरुदत्त विद्यार्थी इस अभियान मे एक महान् कोष-संग्रहक सिद्ध हुए तथा उनके व्याख्यानो तथा उत्साह-युक्त प्रयासो के फलस्वरूप नवजात शिक्षण-संस्था की महती आर्थिक आवश्यकता की पूर्ति हुई। कालान्तर मे न केवल वेदो मे ही अपितु योग के प्रति भी उनको आसक्ति हो गई। इस लक्ष्य के कारण उन्होने सरकारी विद्यालय की नौकरी छोड़ दी। वेदो मे रुचि के कारण उन्होने संस्कृत-व्याकरण, अष्टाध्यायी तथा निरुक्त का अध्ययन किया तथा समय-समय पर वे डी० ए० वी० कालेज के अधिकारियो के सान्निध्य मे आये। कालेज के वैदिक शिक्षा के पाठ्यक्रम से वे सन्तुष्ट न हुए, अतः उन्होने लाला मुंशीराम (बाद मे स्वामी श्रद्धानन्द के साथ मिलकर एक दूसरी शिक्षा-संस्था की स्थापना तथा विकास का विस्तृत कार्य-क्रम तैयार किया जिसका लक्ष्य आर्य पुस्तको तथा वेदो के प्रचार-प्रसार के लिये शिक्षक तैयार करना था। इससे आर्यप्रतिनिधि सभा वैदिक विचार-धारा के उपदेशको की शिक्षा के लिए शीघ्र ही एक कक्षा प्रारम्भ करने को तत्पर हो गयी तथा कालान्तर मे यही लक्ष्य गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना का कारण बना।

गुरुदत्त शक्तिशाली लेखनी तथा विचारशील मस्तिष्क के व्यक्ति थे। सन् १८८८ में उन्होने एक मासिक पत्रिका प्रारम्भ की जिसका नाम "दि वैदिक मैगज़ीन" रखा अब जिसका नाम "वैदिक पाथ" हो गया है। "दि वैदिक मैगज़ीन" इस कर्मठ विद्वान के हाथो में एक महान् शक्ति के रूप में प्रकट हुई। इसमें वैदिक मन्त्रो, उपनिषदों तथा अन्य आर्य-ग्रन्थो पर आलोचनाएं समाहित होती थी। इनमें गुरुदत्त विद्यार्थी के गहन अध्ययन तथा धार्मिक उत्साह की झलक मिलती थी जिन्होने धार्मिक तथा दार्शनिक क्षेत्रों मे एक सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया था। इस पत्रिका ने पंजाब के अधिकाश युवको के विचारों को अत्यधिक प्रभावित किया। इसके अतिरिक्त इस पत्रिका द्वारा वेदों का संदेश दूर-दूर तक पहुँचा।

पं० गुरुदत्त विद्यार्थी एक महान् अध्येता थे तथा शारीरिक असुविधा की परवाह किये बिना वे अपने अध्ययन के विषय पर एक बार में घण्टों तक एकाग्र-चित्त होकर लगे रहते थे। जब वे वैदिक मैगज़ीन के लिये लेख लिखने में व्यस्त होते थे, तब वह बिना विश्राम किये दिन-रात लिखते थे। प्रायः एक बैठक में वे २४ घंटों तक बिना पलक झपकाये अध्ययनरत रहते थे।

इस तरह के कठोर परिश्रम ने उनकी शारीरिक शक्ति को क्षीण कर दिया। सन् १८८६ मे यह होनहार नवयुवक राजयक्ष्मा के क्रूर पंजो मे जकड़ गया। सभी औषधिया तथा प्रार्थनाये व्यर्थ सिद्ध हुई फिर भी स्वामी दयानन्द के इस महान् अनुयायी ने उसी प्रकार शान्ति तथा स्थिरता से मृत्यु का आलिंगन किया जिस प्रकार ६ वर्ष पूर्व उन्होने अपने महान् पथ-प्रदर्शक स्वामी दयानन्द को करते देखा था। उन्होने अन्तिम बार हवन किया तथा वैदिक मंत्रों का पाठ किया। वे १६ मार्च, १८८६ को स्वर्गवासी हुए।

२६वर्ष की अल्पायु में उनका निधन निस्संदेह आर्यसमाज-आन्दोलन के लिए जो उस समय अपनी शैशवावस्था में था, एक महान् क्षति थी, किन्तु यह पंजाबी युवकों की शक्ति तथा उत्साह को बतलाती है, जो वह अपने महान् मार्गदर्शक स्वामी दयानन्द की विचारधारा से ओतप्रोत थे तथा जिन्होंने दुःख तथा असहायावस्था से हार नही मानी। गुरुदत्त के योग्य साथी स्वामी दयानन्द ने उनके द्वारा प्रदीप्त ज्योति को जलाये रखा तथा तब तक चैन की सांस नही ली जब तक कि वैदिक आश्रमों के अनुकरण पर गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना गंगाजी के तट पर सन् १६०२ में नहीं कर दी।

इस प्रकार गुरुदत्त की आत्मा गुरुकुल कांगड़ी को दीर्घकाल तक पथ-प्रदर्शन

तथा पोषण करती रही। 'दि वैदिक मैगजीन' के स्तम्भो के माध्यम से उन्होने जो ज्योति जलाई वह क्षणिक न होकर निरन्तर आर्यसमाज तथा विशेष रूप से शिक्षा के क्षेत्र मे प्रकाश का प्रसार कर रही है। उनकी निष्ठा, भक्ति तथा कर्त्तव्य-परायणता उनके उत्तराधिकारियों को अब तक प्रेरणा देती है।

नोट—पाठक यह अनुभव करेंगे कि श्री गुरुदत्त विद्यार्थी गुरुकुल कांगड़ी विश्व-विद्यालय के लिए महत्त्वपूर्ण व्यक्ति रहे हैं। उनका चरित्र हमारे लिए आज भी प्रेरणास्रोत हैं। ऐसे क्रान्तिकारी युवक पर समस्त देशवासियों को गर्व का अनुभव करना चाहिए। —संपादक

मानव-जीवन में साहित्य की उपादेयता

लेखक—वेद प्रकाश शास्त्री
प्रवक्ता—संस्कृत विभाग

परमपिता परमात्मा की सृष्टि-प्रक्रिया में मानव का स्थान सर्वोपरि स्वीकार्य है क्योकि मनुष्य यास्काचार्य की निरुक्ति के अनुसार वही है जो सोच विचार कर कार्य करता है। अतः ऐसे चिन्तनशील मानव की कृति का स्वयं उसके लिए उपादेय होना स्वाभाविक ही है। मनुष्य भौतिक पिण्डो के आधार पर विभिन्न प्रकार का आविष्कार करता है जो आविष्कार मनुष्य जीवन को सुखी बनाने में समर्थ होता है। इसी प्रकार मनुष्य कवि के रूप मे अपने बौद्धिक वैभव के साथ शब्द की एक विलक्षण सृष्टि करता है जिसको साहित्य का नाम दिया जाता है। यह साहित्य भी मनुष्य के लिए ही है। जिस प्रकार एक वैज्ञानिक द्वारा प्रदत्त पदार्थ मनुष्य के अनेक अभावो की पूर्ति मे सहायक होता है वैसे ही एक कवि के द्वारा प्रदत्त पदार्थ मानव-जीवन की अनेक न्यूनताओं की पूर्ति करने में सक्षम होता है। मनुष्य को एक सामाजिक प्राणी कहा जाता है। उसके अपने सामाजिक वातावरण मे समग्र जीवन की लीलाऐं हुआ करती है। उसी सामाजिक परिधि मे होने वाली मानव-चेष्टाओ का प्रतिबिम्ब कवि निर्मित काव्य पर पडता है इसीलिए अनेक चिन्तको ने साहित्य को समाज का दर्पण कहा है। किसी स्थान के मानव-समाज को पूर्णरूप से जानने के लिए आवश्यक है वहां से सम्बद्ध वहाँ के साहित्य का ज्ञान होना। हम भारतीय हैं तथा भारतीय दृष्टिकोण से मानव-जीवन मे पुरुषार्थ चतुष्टय अथवा चतुर्वर्ग का विशेष महत्त्व है। भारतीय जनता के जीवन मे हरिस्पन्दित यह चतुर्वर्ग अवश्य देखने में आता है इसलिए हमारे पूर्व आचार्यो ने साहित्य क्यो पढ़ना चाहिए इस प्रश्न के उत्तर में कहा था कि साहित्य के पढ़ने मे चतुर्वर्ग की प्राप्ति होती है, क्योकि भारतीत मानव-समाज का लक्ष्य ही चतुर्वर्गफल होना चाहिए क्योकि धर्म के अभाव में मानव को पशुवत् माना गया है तथा धर्म की प्रवृत्ति को जागृत करने में साहित्य का प्रमुख स्थान है। मनुष्य धार्मिक जीवन को अपनाते हुए अपने सुख दुःख के समान अन्य व्यक्ति के

सुख दुःख का अनुभव जब समान रूप से करना चाहता है तब उसको वह संवेदनात्मक दृष्टि साहित्य से ही प्राप्त होती है। साहित्य के अभाव में मानव शारीरिक दृष्टि से मानव होता हुआ भी स्वाभाविक दृष्टिकोण से पशुत्व को प्राप्त हो सकता है इसीलिए कहा है—

'साहित्य-संगीत-कला-विहीनः साक्षात् पशुपुच्छविषाण हीनः'

जहां साहित्य मानव को सभ्यता की ओर अग्रसर करता है वहां मानव-साहित्य के माध्यम से कुछ अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति भी करता है आचार्य मम्मट ने अत्यन्त सरल ढंग से काव्य के व्यापक प्रयोजनो पर विचार किया है। मम्मट ने मानव जीवन में साहित्य की उपादेयता को जिस प्रकार से सजोया है वैसा अन्य किसी आचार्य ने उतना मनोवैज्ञानिक ढंग से चिन्तन नही किया है। मम्मट ने मानव-स्वभाव का पूर्ण अध्ययन करते हुए साहित्य को उसकी हर स्वाभाविक कामना का माध्यम स्वीकार कर लिया है। इस प्रकार हम मम्मटा-नुसार साहित्य की उपादेयता षड्धा मानव-जीवन मे देखते है।

साहित्य से मनुष्य की यशःकामना पूर्ण होती हैं

मानव स्वभावतः अपना सम्मान चाहता है। सम्मान भी मानव की आत्मा का तृप्तिकर भोजन है जिसके अभाव में व्यक्ति अपने को अपूर्ण सा समझता है। यह सम्मान प्रत्यक्ष एवं परोक्ष-भेद से दो प्रकार का होता है। प्रत्यक्ष मे हुए सम्मान को भौतिक दृष्टि का रूप देते हैं तथा परोक्ष में हुए सम्मान को आत्मिक दृष्टि का रूप देते है। इसी को हम यश के नाम से भी पुकारते है क्योंकि यह यश व्यक्ति के भौतिक रूप के नष्ट हो जाने पर भी बना रहता है। इसी यश की कामना प्रत्येक मनुष्य को होती है तथा उसकी प्राप्ति का आधार जहां संसार की अनेक दिशाएं हैं वही पर काव्य भी उनमे से एक है। साहित्य जहाँ अपने निर्माण कर्ता को यश प्रदान करता है वहा वह अपने पढने वाले को भी यश से वंचित नही रहने देता। जैसे महाकवि तुलसी का रामचरितमानस जहां तुलसी के यशस्वी शरीर को हर स्थान पर अलंकृत करता है वही वह अपनी कथा करने वाले के यश को भी दूर-दूर फैलाता है। जिस प्रकार आज तुलसी नहीं है, किन्तु उनका काव्य निरन्तर उनको यशस्वी बनाए हुए है उसी प्रकार तुलसी पर शोध कार्य करने वाले विद्वान भी यश के पात्र बने हुए है। परस्पर वार्तालाप के मध्य जब कोई व्यक्ति समयानुकूल तुलसी की चौपाई पढ़कर सामयिक परिस्थिति को परिपुष्ट करता है तो निस्सन्देह वह उस समय प्रस्तुत समाज में सम्मान का पात्र

बनता ही है। यह व्यक्ति को सम्मान दिलाने का श्रेय एकमात्र साहित्य को ही है। इस प्रकार मनुष्य स्वभावतः जिस यश एवं सम्मान की कामना करता है वह यदि उसे प्राप्त करना चाहता है तो उसे महाकवियों के साहित्य का पठन-पाठन अवश्य करना चाहिए। आज न जाने कितने विद्वान किसी एक कवि का अध्ययन-अध्यापन करते हुए ही संसार में न रहने पर भी अपने शिष्यो में यशोगाथा के रूप में जीवित रहते हैं। अतः साहित्य से मानव जीवन की महत्त्वाकाक्षा पूर्ण होती है।

साहित्य से मानव को अर्थ की उपलब्धि

अर्थ मानव जीवन के लिए सदा अपेक्षित है। अर्थाभाव में व्यक्ति का एक दिन भी व्यतीत करना कष्टदायक हो जाता है। इसलिए अर्थोपार्जन के प्रति मानव-स्वभाव से ही तल्लीन रहता है। समाज में उसी व्यक्ति को प्रतिष्ठा मिलती है जो आर्थिक दृष्टि से ठीक होता है, क्योकि नीतिकारो ने कहा भी है—"यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः" अर्थात् जिसके पास धन है वह व्यक्ति आज के युग में ही नही प्रायः सभी युगों में पूज्य रहा है।

जीवन के ऐसे महत्त्वपूर्ण पक्ष की दिशा में भी मम्मट ने चिन्तन करते हुए लिखा है कि साहित्य से अर्थ की आवश्यकता भी पूर्ण होती है। हम देखते हैं कि प्राचीनकाल में जब राजतंत्र था तब राज्याश्रय में अनेक कवियो को केवल कविता करने मात्र से ही सारी सुख-सुविधाए प्राप्त होती थीं यहां तक कि यदि किसी कवि ने कोई विशेष चमत्कारपूर्ण कविता का निर्माण कर दिया तो उसको एक-एक पद्य के पुरस्कार-स्वरूप एक-एक लाख स्वर्ण मुद्राएँ दे दी जाती थी। प्राचीन युग की बात को छोडकर हम आज की बात करे तो प्रायः हम देखते हैं कि न जाने कितने व्यक्ति साहित्य के ही आधार पर अपना आर्थिक जीवन सुखद मना रहे है। हम देखते है कि आज महाकवि दिनकर संसार मे नही है तथापि उनके काव्य-प्रकटन-प्रकार को अपनाते हुए उनकी कविताओं का पांठ करते हुए आज के कलाकार पुष्कल धन प्राप्त करते हैं तथा अपने को अर्थाभाव से दूर कर सुखमय जीवन बिताते हैं। रामायण की कथा करने वाले कितने ही कथावाचक इतने धन का संचय कर लेते हैं कि एक अच्छा व्यापारी भी उनसे पीछे रह जाता है। केवल साहित्य के सम्पर्क में आकर साहित्य-सेवन का ही यह प्रभाव होता है। अतः जीवन की इतनी महत्त्वपूर्ण आवश्यकता को पूर्ण करने में समर्थ साहित्य के संपर्क में कौन व्यक्ति आने के लिए उद्यत नहीं रहेगा।

साहित्य से मनुष्य को व्यवहारपाटव प्राप्त होता है

व्यवहार का ज्ञान होना भी मनुष्य के सभ्य होने का एक प्रबल प्रमाण है। कभी-कभी मानव धन-सम्पन्न होता हुआ भी व्यावहारिक जीवन की प्रक्रिया से अनभिज्ञ रहकर आत्मग्लानि से भर जाता है। यह साहित्य मनुष्य की व्यावहारिक ज्ञान की अपूर्णता को भ। दूर करता है। किसके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए इस व्यावहारिक पद्धति को ठीक-ठीक समझना सामान्य व्यक्ति का कार्य नही है। जीवन मे व्यवहारगत औचित्य का बडा ही महत्त्व है तथा साहित्य मानव-जीवन के सर्वांगीण रूप को चित्रित करता है। साहित्य मे जीवन की हर विधा के मानव के स्वभाव का, उसकी गतिविधि का, रहन सहन का, पूर्ण वर्णन प्राप्त होता है अतः मानव-स्वभाव को जान लेने तथा तदनुसार उसके साथ व्यवहार करने का ज्ञान हमे सहज रूप से ही साहित्य से प्राप्त हो जाता है।

साहित्य से अनिष्ट का वारण होता है

मनुष्य सदा ही इष्ट को चाहता है। वह कभी नही चाहता कि उसका कही भी कोई अहित हो। यदि कही वह अनिष्ट से प्रभावित होता भी है तो उससे मुक्त होने का उपाय खोजना चाहता है। आचार्य मम्मट के अनुसार व्यक्ति साहित्य के आधार पर अमगल से भी अपनी रक्षा कर सकता है क्योंकि स्त्रोत आदि की रचना अमगलवारण आदि की दृष्टि से ही की जाती है। ऐसे अनेक उदाहरण प्राप्त होते है जबकि साहित्य के पढ़ने से व्यक्ति अमगल से अपनी रक्षा कर लेता है।

साहित्य तत्काल आनन्द देने वाला है

हम देखते है कि हम जो भी कार्य करते हैं हमे उसका फल प्राप्त करने में प्रतीक्षा करनी पड़ती है तथा अन्त मे उसका सुखद फल मिलने पर हम आत्म विभोर होते है किन्तु काव्य के तो पढ़ने या सुनने के अनन्तर हीव्यक्ति आनन्द का अनुभव करता है। जीवन के कष्टमय क्षणो का अनुभव करता हुआ भी व्यक्ति जब साहित्य के सम्पर्क मे आता है तो एक बार तो वह सब कुछ भुलाकर काव्यानन्द

में खो जाता है। उसे सारे मानसिक संत्रास से मुक्ति मिल जाती है। आज के युग मे जबकि व्यक्ति विभिन्न प्रकार के संत्रास का दास बना हुआ है तो उसके लिए साहित्य ही एकमात्र आनन्द का स्थान रह जाता है जहा वह कविता के के माध्यम से आनन्दमयता को प्राप्त कर सकता है। आचार्य मम्मट का कथन है कि साहित्य पढने का मुख्य प्रयोजन 'सद्यः परनिवृत्तिः' ही है क्योकि काव्य के जिन अन्य प्रयोजनो का वर्णन किया गया है वे समय की अपेक्षा रखते है किन्तु इस प्रयोजन मे समय की अपेक्षा नही। यहां तो मानव इस काव्य का श्रवण होते ही आनन्दरूपता को प्राप्त हो जाता है।

साहित्य मानव जीवन को उपदेश देकर नियमित करता है।

कभी-कभी मनुष्य अपने जीवन-मार्ग से भटक जाता है। वह पुनः अपने मार्ग पर आने के लिए प्रयत्न करता हुआ भी नही आ पाता है किन्तु साहित्य उसको पुनः सन्मार्ग पर लाने मे समर्थ है। संसार मे देखा जाता है कि कोई बड़ा व्यक्ति जब कुमार्गगामी हो जाता है तो कोई उसको उपदेश देने का साहस नही करता है उसमे भय, शंका, लज्जा आदि अनेक कारण हो सकते है किन्तु साहित्य किसी भी व्यक्ति को उपदेश देने का साहस कर सकता है। ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं कि कभी-कभी साहित्य का एक वाक्य ही व्यक्ति के जीवन में अभूतपूर्व परिवर्तन करके उसको महान् बनने को प्रेरित कर देता है। इस प्रकार साहित्य मानव जीवन को सभी दृष्टियो से पूर्ण करने मे समर्थ है। आचार्य मम्मट के ये छह प्रयोजन मनुष्य को मनोवैज्ञानिक स्थिति का अध्ययन करते हुए ही सामने आते हैं।

अनमोल वचन

लेखक—सुरेशचन्द्र छात्र एम०ए० द्वितीय वर्ष

१. गुनाह कभी छिपता नहीं, वह तो मनुष्य के मुख पर अंकित रहता है।
—महात्मा गांधी

२. चरित्र संग-साथ में विकसित होता है और बुद्धि एकान्त में।
—गेटे

३. परिश्रम वह चाभी है जो खुश किस्मती को खोल देती है।
—चाणक्य

४. आत्मोन्नति के लिए कठिनाई से बढ़कर कोई स्कूल नहीं है।
—प्रेमचन्द

५. जो तुमसे घृणा करे तुम उसकी भलाई करो।
—ईसामसीह

६. बलवान सर्वविजयी है परन्तु उसकी यह विजय क्षणिक है।
—लिंकन

७. मन एक सफेद कपड़ा है। इसे जिस रंग में डुबोओगे वही रंग इस पर चढ़ जायेगा।
—शेक्सपियर

८. हंसी वह तेल है जिसके बिना जीवन रूपी दीपक बुझ जाता है।
—चेस्टरफील्ड

९. ईश्वर एक बार एक ही क्षण देता है। दूसरा क्षण देने से पहले पहला क्षण वापस ले लेता है।
—स्वेट मार्डेन

१०. अभ्यास न रहने से विद्या विष तुल्य हो जाती है।
—सुभाषित

चुटकले

लेखक—रामपाल सिंह वर्मा,
छात्र बी०ए० फाइनल

१ डाक्टर—(रोगी से)—तुम्हे सबसे अधिक परेशानी कब होती है ?
रोगी—सिर खुजलाते हुए)—सर, तुम्हारा बिल चुकाते समय ।

२. विवाह के बाद वधू की विदाई के समय कन्या-पक्ष की एक लडकी को ज़ोर से रोते देखकर एक महिला ने पूछा, "क्यो री ! तू क्यो रो रही है ? तेरी विदाई थोडे ही है ।"
लडकी—(तपाक से) रोना तो इसी बात का है ।

३. अध्यापक—विद्यार्थी से) महात्मा गाधी के चरित्र पर प्रकाश डालिए ।
विद्यार्थी—सर, आज नही ।
अध्यापक—आज क्यो नही ?
विद्यार्थी—सर, आज मेरे पास टार्च नही है ।

४. अध्यापक—(विद्यार्थी से) रेखा और बिन्दु में क्या अन्तर है ?
विद्यार्थी—सर, जो हीरोइन और साइड हीरोइन मे ।

५. एक व्यक्ति चीख-चीख कर रो रहा था, तो एक सज्जन ने उनसे पूछा, तुम क्यो रो रहे हो ?
व्यक्ति—जब मेरे पिताजी का स्वर्गवास हुआ था तो सब गाव वाले आदमी कहते थे कि हम सब तेरे बाप है और जब मेरी माताजी का स्वर्ग-वास हुआ तो सब गाव की स्त्रिया कहती थी कि हम सब तेरी मां है । लेकिन आज नेरी पत्नी का स्वर्गवास हो गया है तो कोई भी स्त्री आज यह नही कहती कि हम सब तेरी पत्नी हैं ।

★卐★

चरित्र

लेखक—शहीद हसन : छात्र विद्यालकार प्रथम वर्ष

मनुष्य सृष्टि का सर्वोत्तम प्राणी है। अपने सद्गुणो के विकास से उसने लगातार प्रगति की है। ससार का प्रत्येक व्यक्ति सुख चाहता है। लेकिन कुछ व्यक्तियो को उनका चरित्र अच्छा न होने के कारण यह भी नही मिल पाता है। संसार का समस्त चक्कर चरित्र के ऊपर ही निर्भर है। कर्मशीलता ही जीवन है। सृष्टि का प्रत्येक पदार्थ कर्मशीलता के चक्र मे ही घूम रहा है इसीलिए वेदो मे भी कहा गया है कि "अच्छे कर्म करते हुए ही मनुष्य को सौ वर्ष तक जीवित रहने की इच्छा करनी चाहिए" और अच्छे चरित्र वाले आदमी ही अच्छे कार्य कर सकते है इसलिए मनुष्य का चरित्र श्रेष्ठ होना आवश्यक है।

चरित्र के विषय मे अब हम निम्नांकित प्रकार से विचार करेंगे।

१. *सद्गुणों का विकास—*

चरित्र मे अच्छे गुणो का विकास होना आवश्यक है और शिष्टता तथा नम्रता का होना भी आवश्यक समझा जाता है। अच्छे चरित्र में उदारता पायी जाती है और मनुष्य सदाचारी बना रहता है। चरित्रवान मनुष्य हमेशा परोपकारी होता है और उसको प्रति मनुष्य के प्रति स्नेह प्रकट करना होता है।

२, *आर्थिक और मानसिक पवित्रता*

चरित्रवान मनुष्य के भीतर आर्थिक ईमानदारी होनी आवश्यक है क्योकि यदि मनुष्य बेईमान हो, तो उसको हम चरित्रवानो में नही गिन सकते हैं। जैसे

कोई व्यक्ति अपने आपको चरित्रवान समझता हो और वह एक रुपये के ऊपर भी ईमान खराब कर दे तो वह व्यक्ति बेईमान समझा जाता है। उसको चरित्रवान होने का प्रमाण नही दिया जा सकता और चरित्र के भीतर मानसिक पवित्रता का भी होना आवश्यक है। मनुष्य को अपने मन को भ्रमबाजी से दूर रखना चाहिए। उसी व्यक्ति मे आर्थिक और मानसिक पवित्रता का होना आवश्यक है।

३. चरित्र के लक्षण

चरित्र मे चित्त की शुद्धता और इन्द्रियजय होना चाहिए। तप और त्याग करने वाले मनुष्य मे चरित्र के लक्षण पाये जाते हैं और बिना लोभ के किसी कार्य को करना तथा परनिन्दा का परित्याग करना भी चरित्रवान के लक्षण होते है।

वचन और कर्म मे एकता, धैर्य और निरभिमानता आदि गुण सर्वोपरि है।

४. क्षात्र बल की अपेक्षा ब्रह्म-बल अधिक महत्वपूर्ण है

चरित्र की श्रेष्ठता के लिए क्षात्र बल का महत्त्व है और इसमे ब्रह्म बल के समान ही तपस्या की आवश्यकता होती है तथा उसको प्राप्त करना पड़ता है। अच्छे कार्य करने मे यश की प्राप्ति होती है और बहुत अधिक मेहनत की आवश्यकता होती है।

प्रत्येक मनुष्य को दुर्गुण को भुला कर गुणो को अपनी ओर खीचना पड़ता है जब चरित्र मे उसके कुछ गुण की बढ़ोतरी होती है।

५. कुछ महापुरुषों के उदाहरण

अच्छे चरित्र वाले कुछ मनुष्यों के विषय मे नीचे लिखा जा रहा है।

संस्कृत के एक कवि की उक्ति है—"इस परिवर्तनशील संसार में कौन पैदा नहीं होता और कौन नही मरता अर्थात् सभी लोग पैदा होते हैं और सभी लोग

मरते है किन्तु वास्तव में जीवन उसी मनुष्य का सार्थक है जिससे देश और जाति की उन्नति हो।" लेकिन ऐसे कार्य अच्छे चरित्रवान मनुष्य के द्वारा ही किये जाते हैं जैसे गांधी जी इस देश के राष्ट्रपिता हुए है जिन्होने अंग्रेजो जैसी शक्ति को अहिंसा से दूर कर दिया और हमको आत्म-सम्मान की शक्ति दी तथा अग्रेजो की दासता से मुक्ति दिलाई। वे अहिंसा, दीनता, विश्वप्रेम के समर्थक थे। सन् १६४२ का 'भारत छोडो आन्दोलन' गाधी जी का चलाया हुआ सदा भारत के इतिहास मे अमर रहेगा। वे सत्यनिष्ठा और अहिंसा के प्रेमी थे।

इसी प्रकार अच्छे चरित्रवान मनुष्यो के कुछ नाम राम, बुद्ध, शकराचार्य, स्वामी दयानन्द एवं विवेकानन्द आदि इतिहास मे आज भी जीवित है जिन्होने हर तरह का बलिदान करके योगदान दिया और प्रसन्नतापूर्वक स्वर्ग सिधार गये।

६. दुश्चरित्र मित्रों से दूर रहना

दुश्चरित्र व्यक्ति सर्प के समान होता है। इस प्रकार के मनुष्य को मित्रता से दूर रखना चाहिए यदि अच्छा चरित्र वाला मनुष्य दुष्चरित्र से दोस्ती करले तो वह भी दुष्चरित्र ही हो जायगा और उस व्यक्ति को अपयश की प्राप्ति होती है। इस प्रकार दुश्चरित्र व्यक्ति से बडी हानि उठानी पढ सकती है।

७. भारत में चरित्र की प्रधानता

भारत मे चरित्र को बहुत अधिक प्रधानता दी गयी है। भारत मे बहुत अधिक मनुष्य चरित्रवान हुए जिनकी आज भी याद आती है और उनको हम श्रद्धा से मानते है। चरित्र बल से उन्होने बडे-बडे कार्य किये जिनका भारत के इतिहास मे आज भी नाम है और रहेगा।

८. आधुनिक युग में पुनः प्रतिष्ठा की आवश्यकता

आधुनिक युग में भी चरित्र को प्रधानता दी जाती है और चरित्र की प्रतिष्ठा से मनुष्य चरित्रवान समझा जाता हैं।

इसलिए हम कह सकते हैं कि आज के युग में चरित्रवान मनुष्य को होना अति आवश्यक हैं क्योंकि चरित्र को प्रधानता दी जाती है।

अनुशासन

लेखक—रामकृष्ण मित्तल
छात्र एम०ए० प्रथम वर्ष (इतिहास)

"मेरा (आत्मा का) अपनी इन्द्रियों पर पूर्ण शासन रहे" यही अनुशासन का अर्थ है। कहने का अर्थ यह है कि इन्द्रिया उस परमात्मा के बताये मार्ग पर ही चलें जो विश्व के लिए कल्याणमय हो। मैं (यह आत्मा) उस परमात्मा और विश्व-कल्याण का नेत्रक बनकर अपनी बुद्धि के माध्यम से इन सब इन्द्रियों को समाज-कल्याण के मार्ग मे दौड़ाता रहूँ यह अनुशासन है। पूर्ण अनुशासन तो स्वय परमात्मा का ही है। देखो वह सारे विश्व को सदा से सदा तक अपने नियम पर चला रहा है। आज तक कभी किसी भूगोल, ग्रह, उपग्रह, नक्षत्र, सूर्य, चन्द्र, तारागण आदि ने उस परम पिता के बाधित अनुशासन को भग नही किया। जरा आप सोचे यदि विश्व अनुशासन मे न होता तो क्या होता ? हमारा आपका तो जीना ही दूभर हो जाता। मुक्त आत्मा, ब्रह्म-सदृश योगी पुरुष जैसे भगवान कृष्ण, हनुमान, स्वामी दयानन्द, अनुशासन के दूसरे सासारिक उदाहरण है जिन्हे आज दुनिया पूजती है। उसके किये कार्य हमारे मार्ग दर्शक है। महात्मा गाधी, सुकरात, कार्ल मार्क्स, तुलसीदास, कबीर कोई पहलवान नही थे। उन्होने अपनी बुद्धि को अनुशासित किया और विश्व-विजय की अपनी वाणी, अपनी कलम से। आज भी दुनिया उस कबीर को याद करती है जो उस समय की फैली सामाजिक उच्छृंखलता को अपनी दिव्य-ज्ञान-वाणी से अनुशासित कर गया। मै (आत्मा) अपनी बुद्धि को जितना भी नियन्त्रण मैं कर लू गा उतना ही मैं इस विश्व मे कार्य कर सकू ंगा। विश्व का इतिहास इसका प्रमाण है। दुनिया सन्तो, महात्माओ के सामने क्यो दडवत् पड़ी है, क्योकि वे कुछ अनुशासित है।

अनुशासन का न होना मेरे एवं समाज के लिए दु:खकर है। आज प्रजातन्त्र में चारो ओर मूर्खतन्त्र या घोर अनुशासनहीनता दीख पड़ती है। पहले तो हम ही

शास्त्रो मे अनुशासित नही है। वेद मे विवाह सन्तानोत्पत्ति के लिए है जिसका कुछ क्रिया कर्म, संस्कार है पर कामी अन्धे इसे समझते नही और कबाडखाना औलाद पैदा कर रहे है जिनसे मा, बाप, गुरु, वृद्ध एवं सन्त दुखी है, वे किसी की सेवा-सुश्रुषा करना पसन्द नही करते। पढाई-लिखाई तो क्या करेगे ? उल्टे परीक्षा मे नकल मारते है। वे गरीब मजदूर की क्या सेवा करेगे ? जबकि रेडो वाले का सामान लूट कर खा जाते है। गुरुकुल भी पीछे नही है। उनके सभी अधिकारी शुद्ध भावना के व्यक्ति नही है। हरिद्वार रोड पर ऋषिकुल विद्यापीठ का टूटा दरवाजा हिन्दुओ की अनुशासन-हीनता का प्रमाण है। इसीलिए मुरादाबाद से भी हिन्दू भागने को आतुर है।

हम वोट उन्हे देते है तो परम अनुशासनहीन है इसलिए आज विश्व का क्या हाल है ? अल्पवयस्क कन्याओ से बलात्कार हो रहे है। कोई मा, बहिन, भाई अपनी इज्जत की सुरक्षा नही देखता। मेडीकल कालिजो मे नकल मारने वाले अनुशासनहीन विद्यार्थी व कराने वाले मूर्ख अध्यापक कल के विश्व-समाज को विष पिला रहे है। कल हमारी, तुम्हारी मा बहिनो की हत्याएं ऐसे मूर्ख चिकित्सको द्वारा होगी। अयोग्य सैनिक, भारत की सीमा की रक्षा न कर सकेगा। इसलिए ५० हजार वर्ग मील क्षेत्र १५ अगस्त १९४७ के बाद चीन, पाकिस्तान के अधिकार मे चला गया है क्या फिर १८५७ के गदर की तरह विदेशियो के जूते खाने है ? भारतवासियो ! जागो, परमात्मा का ध्यान करो। उसके परमगुण अनुशासन को धारण करो। विश्व को भारत बनाओ। वैदिक संस्कृति का प्रचार करो। अपने बालको को राष्ट्रीय स्वय सेवक सघ या किसी अन्य अच्छी संस्था मे भेजो, दूसरों की सेवा करो, मोक्ष प्राप्त करो।

कहानी

अनुत्तरित

लेखक—भगवानदेव पाण्डेय एम0ए0, पी-एच0डी0,
प्रवक्ता, हिन्दी-विभाग

मेरा मित्र रीतेश आज काफी उद्विग्न था। मेरे बार-बार के आग्रह पर वह आखिर मे मुझसे खुल ही गया। वह कहने लगा, 'विवेक ! मैं आज घर से आ रहा हू। मेरी चार वर्ष की आशा बहुत बातूनी है। मेरे घर पहुँचते ही वह दौडी हुई आयी और अपने खाद्य-पदार्थो एव आवश्यकताओ की प्राप्ति के बाद भी मेरे नजदीक डटी रही तथा मुझसे पूछने लगी—'पापा ! आप मुझे देखने आए देखने आए है न ? सभी कहती है कि आप मम्मी से नाराज है और आप सिर्फ मुझसे मिलने आते है ?" मैने उसे डाट दिया फिर भी वह गुम सुम बैठी रही तुम तो जानती ही हो विवेक ! मैने सुषमा को कभी भी नही स्वीकारा।' घर वालो की इच्छा और जिद से मेरे तथा उसके तन का मिलन तो करा दिया गया, लेकिन मन से उसे मैने कभी नही चाहा। आज जब आने लगा तो आशा का यह प्रश्न—"पापा ! मम्मी कहती हैं कि तुम उनसे हमेशा नाराज रहते हो। अब घर नही आओगे। क्या मुझे भी देखने नही आओगे पापा ?" विवेक मैं चुपचाप घर से चला आया, लेकिन आशा के प्रश्न अब तक मुझे परेशान किए जा रहे है। आखिर कब तक चलेगा यह सब ?

★★★ ★★★ ★★★

इधर अत्यधिक व्यस्तता के कारण मैं रीतेश से नही मिल सका लेकिन आज खुद ही वह मेरे घर आया और मुझे अस्पताल चलने के लिए विवश करने लगा। इसके परेशान चेहरे को देखकर मैं भी उसके साथ चल पड़ा। अस्पताल में रीतेश के परिवार के सभी लोग उपस्थित थे और सभी के चेहरो पर मुर्दनी छाई हुई थी।

उसकी बेटी आशा जब दौडकर उससे लिपट कर पूछती है कि पापा—मम्मी को क्या हो गया ? वह काली क्यो हो गई ? मैंने जब उस पर प्रश्नवाचक निगाह डाली तो उसने सिर्फ एक बिस्तरे पर पडी जीती-जागती लाश की ओर इशारा कर दिया । बिस्तरे तक पहुँचते ही मैं उस पर पडी सुषमा भाभी को देखते ही घबरा उठा । उनका सारा शरीर झुलसकर काला पड चुका था । सदा से मुस्कराता एव सुन्दर मुखडा निस्तेज पड चुका था । मुझे कातर दृष्टि से देखते हुए उन्होने रुकने का सकेत तथा बैठने का इशारा किया । सारा कमरा दुर्गन्ध से भरा पडा था और वहा एक क्षण भी रुकना मुश्किल था फिर भी मै न जाने किस प्रेरणा से वही पडे स्टूल पर बैठ गया । भाभी भी शात पडी रही । शायद उन्हे एकान्त का इन्तजार था । जब सभी लोग चले गए तो मुझे सम्बोधित करते हुए भाभी ने व्यथित शब्दो मे कहना शुरु किया—"विवेक ! आज मुझे यह अनुभव हुआ कि मनुष्य को सभी बाते घनिष्ट से भी घनिष्ट से नही कहनी चाहिए । सभी बाते कहने का जो परिणाम होता है उसे मैं आज भुगत रही हूं । विवेक ! सोचो वह मनुष्य कैसा होगा जो स्वयं अपने शरीर मे आग लगाता होगा ? कौन सा ऐसा कारण है कि व्यक्ति इतना क्रूर कदम उठाने में भी नही हिचकता ?"

भाभी की कारुणिक ध्वनि कमरे मे गूंज रही थी । उनका कहना जारी था– "विवेक ! मेरा सिर्फ इतना तो अपराध था न कि मैंने युवावस्था की पहली ही दहलीज पर की गई भूल को स्वीकार कर ली थी और वह भी अपने सर्वस्व पति के सामने । अगर मैं इसे स्वीकार न करती तो शायद उपेक्षित न की जाती और शायद स्थिति यहा तक न पहुँच पाती । विवेक ! नारी बहुत ही कमजोर होती है, वह भी पति के सामने । वह सब कुछ सहन कर सकती है, लेकिन पति की उपेक्षा कभी भी बर्दाश्त नही कर सकती । आखिर नारी पुरुष के जुल्म को कब तक सहन करती रहेगी ? कब तक वह चिता मे कभी खुद जलती तथा कभी जलाई जाती रहेगी ? उन्होने मेरी एक भूल को तो क्षमा नही किया, लेकिन मैं उनके द्वारा किए गए आज तक के सभी कृत्यो को भूलती गई । पडोस की जो शान्ति दीदी हैं—कहने को तो वह उनकी बहन है लेकिन रात के अंधेरे में......। वास्तव मे यह मेरी भूल थी जो मैंने उन्हे अपनी अंतरंगिनी बनाना चाहा था । जब भाभी की आगे की कारुणिक कथा सुनने की शक्ति मुझमें नही रह गई तो मैं उन्हे सिसकती छोडकर बाहर की तरफ चल दिया । तभी भाभी की ऊंची आवाज मेरे कानो मे पड़ी—'विवेक ! हो सके तो मुझे कंधा देना ।"

बाहर रीतेश अपनी बच्ची के साथ बैठा था । मैं उसी के नजदीक जाकर खडा हो गया । आशा पूछ रही थी—"पापा ! मुझे ही देखने आए हो न ? मम्मी से भी मिल लो । वह कह रहीं थी कि अब तुम उनसे कभी नही मिल सकोगे ।

वे कहती है कि वे अब तुमसे बहुत दूर चली जायंगी। क्या यह सच है पापा ?" रीतेश ने उसे डाट दिया। सहमकर कुछ देर तक वह शात बैठी रही, फिर उसने पूछना शुरु किया—"पापा ! दादी माँ कहती है कि जब मम्मी बहुत दूर चली जायंगी तो तुम मेरे लिए नयी मम्मी लाओगे ? तो क्या जब तुम भी मम्मी के यहां चले जाओगे तो नई मम्मी भी मेरे लिए नया पापा लाएगी ?" इसके आगे मै सुनने की स्थिति मे नही रहा और चुपचाप घर चला आया।

★★★ ★★★ ★★★

इधर कई परेशानियो के कारण भाभी को देखने अस्पताल नही जा पाया था, लेकिन आज पता नहीं क्यो सुबह से ही मन खिन्न था। कुछ भी करने की इच्छा नही हो रही थी। आखिरकार जब मन को शान्ति नही मिली तो भाभी को देखने के लिए अस्पताल की ओर चल पडा लेकिन अस्पताल की सीढियाँ चढने तक मेरे पैर लडखडा रहे थे। जब मै बरामदे मे पहुँचा तो बरामदा खाली था। मैने व्याकुल होकर जब कमरे मे प्रवेश किया तो मुझमे चलने की शक्ति नही रह गई थी। मैने देखा वह कमरा खाली था और उसमे धुलाई होने के कारण उसमे गंध आ रही थी। मै बोझिल एवं पस्त मन से घिसटते हुए घर की ओर चल पडा लेकिन मेरे कदम अपने आप श्मशान घाट तक पहुच कर ही रुके। मै घर से भाभी के प्रश्नो का उत्तर देने के लिए चला था, लेकिन उनकी जलती चिता अनुत्तरित ही रही।

ग्राम-सुधार

लेखक—जातीराम विद्यालंकार
प्रथम वर्ष

प्रस्तावना

ग्रामों के सामाजिक जीवन की दशा।

"अहा ! ग्राम-जीवन भी क्या है ? क्यो न इसे सबका मन चाहे ?"

उपर्युक्त कविता की पंक्तियो मे ग्राम-समाज-जीवन की सुन्दरता का चित्रांकन किया गया है। प्राकृतिक दृश्यो की सुषमा, स्वास्थ्यप्रद वातावरण, सात्विक प्रेम, त्यागमय जीवन और निष्कपट व्यवहार की दृष्टि से ग्राम-जीवन एक आदर्श जीवन है। पर क्या कारण है कि हमारा मन सामाजिक जीवन को अंगीकार करने को ललक नही उठता ? इसमें दोष हमारा है। अखिल जगत का प्राणाधार अन्न कहां पैदा होता है ? ग्राम में। इस अन्न का उत्पादक किसान कहा रहता है ? उस समाज के विषय में तब क्यो न कहा जाय कि इसमे दोष हमारी दृष्टि का है ? हम किसान की महिमा-महत्ता का मूल्याकन राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की निम्न पंक्तियो मे नही करते—

बरसा रहा रवि अनल भूतल तवा सा जल रहा।
चल रहा सन-सन पवन तन से पसीना ढल रहा॥
देखा कृषक शोणित सुखाकर हल तथापि चला रहे।
किस लोभ से इस आच में वे निज शरीर जला रहे॥

सच है आज गांव और किसान की दशा हीन से हीनतर हो गई है। उन्हें न भरपेट भोजन मिलता है और न शरीर ढकने को वस्त्र। सामाजिक कुरीतियां,

कलह, शोषण तथा अत्याचारो ने आज उन्हें खोखला बना दिया है। यही कारण है कि पन्त जी को आधुनिक समाज मानव-लोक के समान भी प्रतीत नही होते, यथा—

यह तो मानव लोक नही रे यह है नरक अपरिचित।
यह भारत की ग्राम-सभ्यता, संस्कृति से अपरिचित॥
यह भारत की ग्राम-सभ्यता, संस्कृति से निर्वासित।
अकथनीय क्षुद्रता विवशता भरी यहा के जग में॥

यद्यपि यहां प्रकृति का कण-कण आनन्द-भवन रहता है किन्तु यहां के निवासी तो जीते हुए मुर्दे के समान हैं। यथा—

प्रकृति धाम यह तृण-तृण कण-कण जहां प्रफुल्लित जीवित।
यहा अकेला मानव ही रे चिर विषण्ण जीवन्मृत॥

सामाजिक जीवन में सुधार की आवश्यकता

भारत ग्रामों का देश है। उसकी आबादी का अधिकतम भाग ग्रामो में ही रहता है अतः जब तक ग्रामो की दशा का सुधार न होगा देश की उन्नति सम्भव नही है। यह ठीक है कि १५ अगस्त १६४७ से पहले पराधीन भारत मे ग्राम और उसका किसान उपेक्षा के विषय रह सकते थे। वे ज़मीदारी प्रथा के ज़ुल्म सहन कर सकते थे पर बापू के स्वाधीन भारत मे ग्राम और वहा के किसान क्यों पिछड़े पडे रहे ? आज हम सबको ग्रामो की समस्या का समाधान करना ही होगा।

समाज-सुधार के उपाय

अब प्रश्न यह उठता है कि समाज और उसके निवासी किसान की दुर्व्यवस्था का निराकरण कैसे किया जाय ? गांव की आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक उन्नति कैसे की जाय ? इसी प्रकार के अन्य प्रश्नो के उत्तर में ग्रामोन्नति का इतिहास छिपा है।

सर्वोदय की भावना का प्रचार

समाजों की दीन-दशा देखकर पूज्य बापूजी को भी दुःख हुआ था और

उन्होने इन्हे सुधारने के लिए सर्वोदय-सघ की स्थापना की थी। इस योजना मे अथ के विकन्द्रीकरण पर बहुत बल दिया गया है। इसमे माना गया है कि धन का वितरण ग्राम और नगर मे समान रूप से होना चाहिए। ग्रामो मे कुटीर उद्योग धन्धो को प्रोत्साहन देना चाहिए। ग्राम पचायत ही ग्राम की अखिल व्यवस्था की स्वामिनी होनी चाहिए। उस ग्राम-पचायत के पच परमेश्वर अपने ग्राम की शिक्षा निवास, औषधि वितरण मनोरजन आदि पर अपना ही अधिकार अकुश रख। दूसरे शब्दो मे कहा जाय तो किसान अपने ग्राम की सम्पदा से अपने ग्राम का सुधार करे। हमे सर्वोदय के सिद्धान्तो पर चलकर ग्रामो मे आर्थिक, सामाजिक तथा सास्कृतिक सुधार कर उनकी उन्नति करनी चाहिए।

आर्थिक सुधार

किसान नमक, मिच और सुई धागा जैसी दैनिक जीवन की आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए अपने अन्न, दूध, घी को बेचने के लिए शहरो पर आश्रित रहता है। हमने देखा है कि किसान की सच्चाई से अनुचित लाभ उठाकर पू जीपतियों ने किसान की कमाई का अन्न और कपास छीनकर शहरो मे पहुचाया है। शहर के व्यापारी वग ने उस सीधी भेड की ऊन नोचने मे कोई कोर कसर नही रखी है। अत आज ग्रामो की उन्नति के लिए सहकारी सघो की स्थापना करनी होगी। यहा किसान अपनी उपज को बेचेगा, अपनी आवश्यकता की चीजो को खरीदेगा, आवश्यकता पडने पर उसका एकाधिकार होगा। ऐसी दशा मे उसे व्यापारी नही लूटेगा उसकी आर्थिक दशा सुधरेगी और वह आनन्द का उपभोग करेगा।

कृषि-सुधार

आज का किसान सैंकडो वर्षों की पुरानी परिपाटी मे खेती कर रहा है। परिणाम यह है कि निरन्तर प्रयत्न करने पर भी उसे उचित फल नही मिलता। अत खेती की प्रणाली मे आधुनिक आविष्कारो और खोजो की सहायता से प रवर्तन करना चाहिए। अच्छी खाद श्रेष्ठ बीज उपयुक्त सिंचाइ आदि का प्रबन्ध कर उपज मे वृद्धि के साधन जुटाने चाहिए। चकबन्दी तथा सहकारी खेती को भी स्वीकार करक लाभ उठाना चाहिए।

कुटीर उद्योगो का विकास

किसानो के पास ऐसा काफी समय होता है जब वे खेती का काम नही करते।

इसके अतिरिक्त ग्रामो की भूमि बढती हुई आबादी के बोझ को संभालने मे भी असमर्थ है। अतः हमे किसानो को कुटीर-उद्योगो की शिक्षा देकर उन्हे उनमे लगाना चाहिए। सूत कातकर, चमडे तथा दरी बुनकर, रस्सी बटकर, डलियां तथा चटाई बनाकर, चमडे तथा लकड़ी की दस्तकारी को प्रोत्साहन देकर ग्रामो की आर्थिक दशा को सरलता से संभाला जा सकता है।

सामाजिक सुधार

ग्रामो में बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, छुआछूत, नशे का सेवन, जुआ तथा पारस्परिक कलह आदि अनेक कुरीतिया फैली हुई है। इन्होने ग्राम्य जीवन को क्षतविक्षत कर दिया है। नाना प्रकार के संगठनो द्वारा इन्हे दूर करना चाहिए।

सांस्कृतिक सुधार

आज ग्रामो मे अशिक्षा का बोलबाला है। इसके कारण ग्रामीणो को बड़ी-बडी कठिनाइयो का सामना करना पडता है। हमे पाठशालाओ मे ग्रामीण जन-शिक्षा की स्थापना करके निश्शुल्क शिक्षा का प्रबन्ध करना चाहिए जिससे ग्रामीण-जन शिक्षा का लाभ उठा सके। इससे ग्रामो मे सुख और शान्ति की वर्षा होने लगेगी। किसी कवि ने इसी कल्पना को ध्यान में रखकर कहा है —

जगती यही ज्ञान की ज्योति शिक्षा की यदि कमी न होती।
तो ये ग्राम स्वर्ग बन जाते पूर्ण शान्ति रस में पग जाते॥

मनोरंजन का प्रबन्ध

समाजो में रेडियो-संगीत-गोष्ठी, कवि-सम्मेलन, नाटक-समारोह तथा पुस्तकालय आदि का प्रबन्ध होना चाहिए। इनमे ग्रामीणो का मनोरंजन होगा और ज्ञान की वृद्धि भी होगी।

स्वास्थ्य-रक्षा के लिए प्रबन्ध

किसान दीर्घ-जीवन के केन्द्र ग्रामों में निवास करता है। विरल आवास सदनो के होने से ग्राम मे प्राण-पोषक पवन का संचार सदैव अव्याहत गति से होता है किन्तु खाद का एकत्रीकरण, गन्दे जल का निष्कासन न होना, पशु-निवास आदि की व्यवस्था के अभाव के होने से ग्रामो मे गन्दगी फैलती है। वर्षा ऋतु मे किसान अपने पशुओ को कच्चे मार्गो पर बाधे रखता है। ग्राम के मार्ग वर्षा-ऋतु मे दुर्गन्ध छोडते है। ग्राम-पंचायतो को चाहिए कि वे ग्रामीणो को स्वच्छता का महत्त्व समझाकर गांव को स्वच्छ तथा साफ सुथरा रखने का प्रबन्ध करे।

ऐसे चिकित्सालयौ की भी स्थापना होनी चाहिए जहाँ से किसान निःशुल्क औषधि तथा उचित परिचर्या प्राप्त कर सके।

उपसंहार

यदि भारतीय किसान को उक्त सुविधाये प्राप्त हो जायेगी तो वह निश्चय ही समाज की वसुन्धरा को सुजला, सुफला तथा शस्य श्यामला बनाकर छोडेगा। वह विश्वामित्र की नई दुनिया बसा देगा। ग्राम स्वर्ग बन जायेगे। अन्य देशो के संगठन ग्रामो के निवास को तरसेगे और हम स्वाभिमान के साथ कह सकेंगे कि हमारा देश सबसे महान है।

संगति का फल

लेखक—डॉ. भगवानदेव पाण्डेय, एम ए , पी-एच.डी ,
प्रवक्ता, हिन्दी विभाग

'सठ सुधरहिं सतसंगति पाई' वाली उक्ति भले ही दुष्टो को सुधारने का उपयुक्त कारण हो पर कभी-कभी सज्जनो को दुष्टों की सगति का कुपरिणाम भुगतना पडता है। कहानी बहुत पुरानी और सच्ची है, जिसमे एक सज्जन को संगति का फल जान की कीमत देकर चुकाना पड़ा था।

एक पेड पर एक हंस तथा एक कौआ रहते थे। एक दिन उसी पेड के नीचे एक बहेलिया ग्रीष्म की भीषण गर्मी से थका-मादा और वृक्ष की शीतल छाया पाकर सो गया। जहा वह सोया हुआ था, उसी की ऊपर वाली डाली पर हस बठा हुआ अपने पखो से उस बहेलिए के चेहरे पर पड़ने वाली धूप को रोककर बहेलिये को आराम से सोने देने के लिए स्वय सूर्य की गर्मी को सहन कर रहा था।

पेड की एक डाली पर कौवा भी बैठा था। कौवे के सम्बन्ध मे जिन गुणो का वर्णन किया गया है कि वह बाहर-भीतर अर्थात् तन एव मन दोनो से काला होता है, उसे बहेलिए का इस तरह निर्बाध सोना अच्छा नही लगा। वह अपनी डाल से उड़कर ठीक उस बहेलिए के मु ह के ठीक ऊपर वाली डाल पर आ बैठा और वही से उसके मुंह पर बीट करके उड़ गया।

मु ह पर बीट पड़ते ही बहेलिया जग गया और क्रोधित होकर जब ऊपर की तरफ देखा तो अपने ठीक ऊपर हस को पर फैलाए बैठे पाया। वह क्रोधान्ध हो उठा और जैसाकि होता है क्रोध में व्यक्ति का विवेक गायब हो जाता है, बहेलिए ने अपना धनुष-बाण उठाया तथा हंस का निशाना लगाकर बाण छोड़ दिया। घायल होकर हंस जमीन पर गिर पड़ा और कातर निगाहो से बहेलिए की तरफ देखता हुआ अपने अपराध के सम्बन्ध में जानना चाहा। बहेलिए ने जब उस पर अपने मुंह मे बीट करने का अपराध आयोपित किया, तब हंस ने सारी परिस्थिति को समझते हुए बहेलिए से कहा कि दुष्टो की संगति का जो सुख भुगतना पडता है उसे मैं भोग रहा हूं और यह कहते-कहते उसने अपना शरीर त्याग दिया। दुष्टो की संगति के परिणाम को ध्यान में रखकर ही गोस्वामी तुलसीदास जी ने दुष्टो की संगति से नरक का वास अच्छा कहा था —

बरु भल बास नरक कर ताता।
दुष्ट संग जनि देइ विधाता॥

आज की युवा पीढ़ी का दायित्व

लेखक—ऋषिपाल सिंह चौहान
छात्र-विद्यालंकार प्रथम वर्ष

प्रस्तावना

प्रकृति के सभी अवयव शक्ति सम्पन्न है। नदी अपने प्रखर वेग से किनारो को तोडने की क्षमता संजोए हुये है, तो सागर अपनी उत्ताल तरंगों से समस्त जल को मथ कर फेनिल कर देने की असीम शक्ति अपने अन्तर में छिपाये हुए है। वायु तीव्र गति से चलने पर प्रभजन का रूप ग्रहण कर बलशाली पेड़ो को भी जड से उखाड फेकने की असीम शक्ति का स्वामी है, तो सूर्य अपनी प्रचण्ड अग्नि किरणो से हरे-भरे उपवन को भी जला डालने की क्षमता रखता है। मानव भी प्रकृति का ही पुत्र है। फिर भला उसमें शक्ति का अभाव क्योंकर हो सकता है? युवा पीढी की यह प्रचण्डता और दुर्दमनीयता वस्तुतः मानव को प्रकृति से ही वरदान रूप मे प्राप्त हुई है।

युवा पीढ़ी का महत्व

युवा-वर्ग देश की महान सम्पदा होता है। भले ही कोई दम्भ के वशीभूत इस वर्ग के महत्त्व को न स्वीकारे, किन्तु यह बात सत्य है कि आज तक संसार मे जितनी भी क्रान्तिया हुई हैं इस वर्ग ने उन क्रान्तियो को मंजिलें-मकसूद तक पहुंचाने में अपनी वास्तविक भूमिका निभाई है। वैसे भी आज का युवा कल का नेता होगा। आने वाले समय मे देश के नेतृत्व का भार उसी के कन्धो पर होगा। अतः इस वर्ग की शक्ति की उपेक्षा करके देश की प्रगति के स्वप्न देखना ख्याली घोड़े दौड़ाना ही है।

नव-भारत के निर्माण में युवाओं का योगदान

आज आजादी के ३३ वर्ष पश्चात् भी हमारे देश की प्रगति अवरुद्ध है। इस प्रगति को मूर्त रूप देने मे युवा पीढी अपनी निर्णायक भूमिका अदा करती है। जैसे-

शिक्षा के क्षेत्र में युवा पीढ़ी का योगदान

हमारे देश की प्रगति के मार्ग में अशिक्षा एक बहुत बड़ा अभिशाप रही है। यदि इस सन्दर्भ मे हमारा युवा पीढी-वर्ग सहयोग दे तो यह निश्चित है कि हमारे देश की कितनी ही समस्याये स्वतः समाप्त हो जायगी। युवा वर्ग को चाहिए कि वह अनुशासन मे होकर ठोस और क्रमवद्ध अध्ययन करे। युवा पीढीवर्ग को चाहिए वह गावो मे जाकर प्रौढ लोगो को शिक्षित करे, उन्हें पढना तथा लिखना सिखाए जिन्होने दुर्भाग्य से स्कूल और किताबो की शक्ल तक न देखी हो।

युवा पीढ़ी का सामाजिक क्षेत्र में योगदान

यद्यपि आज का युग वैज्ञानिक युग है। रेडियो एवं टेलीविज़न, अखबार और पत्र-पत्रिकाये देश और समाज को चेतनावान बनाने मे अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही है फिर भी भारतीय समाज बडे पैमाने पर अनेक प्रकार की कुरीतियों तथा अन्धविश्वासो की शृंखलाओ से आबद्ध है। यहां के समाज में व्याप्त दहेज प्रथा, बलि-प्रथा, जाति-प्रथा, वर्ण-व्यवस्था, वर्ग-भेद, मृत्यु-भोज और धर्म की आड़ मे अनेक प्रकार के कुकर्म देश की नीव को खोखला किये दे रहे हैं।

राजनैतिक क्षेत्र में युवाओं की निर्णायक भूमिका

कुछ लोग हैं जो दिन-रात युवाओ की राजनीति से अलग रहने और निरन्तर अध्ययनरत रहने की ही शिक्षा देते रहते हैं। राजनीति आज जीवन का एक महत्त्वपूर्ण अंग बन चुकी है। इसे जीवन से अलग करना किसी हृदयहीन व्यक्ति की कल्पना है। आज हमारे देश में राजनैतिक क्षेत्र में अनेकानेक भ्रष्टाचार व्याप्त हैं। रिश्वतखोरी, भाई-भतीजावाद, कुर्सीवाद और दल-बदल आदि इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। इसी का यह परिणाम है कि हमारे देश की राजनीति

भ्रष्ट हो चुकी है कि कोई भी सभ्य व्यक्ति इसकी चर्चा तक करना पाप समझता है। यदि हमारा समुदाय चाहे तो इस समूचे राजनतिक भ्रष्टाचार और अराजकता की स्थिति से छुटकारा दिलाने मे अपना महत्त्वपूर्ण योगदान कर सकता है तथा राजनीति को स्वच्छ और रचनात्मक रूप प्रदान कर सकता है परन्तु साथ ही इतना भी भी सत्य है कि इसके लिए हमारे युवा वर्ग को शान्ति, सहयोग और संगठन का सहारा लेना होगा। युवा संगठनो के द्वारा अनुशासनबद्ध होकर जनमत तैयार करना पडेगा। इतिहास साक्षो है कि स्लर्गीय श्री संजय गाँधो ने युवा वर्ग को सगठित कर जो दिशा दी वह राष्ट्र के लिए कल्याणकारी सिद्ध हुई और हो हो रही है।

युवापीढ़ी का आर्थिक क्षेत्र में योगदान

आर्थिक दृष्टि से भी हमारा देश अभी बहुत पिछडा हुआ है। इसी का परिणाम है कि देश मे बडे पैमाने पर गरोबी, भुखमरी और बेरोजगारी व्याप्त है। इस सन्दर्भ मे ही हमारा युवा वर्ग बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। हमारे युवा वर्ग को चाहिये कि वह देश को गरीबी मिटाने के लिए ग्रामीण क्षेत्रो मे जाकर ग्रामोत्थान के कार्यो में सहयोग दे। देखने मे आया है कि हमारे अधिकाँश ग्रामीण लोग अशिक्षित होते है। यदि युवा वर्ग उन्हे खेती करने की नई विधियो एवं नये साधनो से परिचित कराये तो देश की बहुत बड़ी समस्या सुलझ सकती है।

हमारा युवा-समुदाय आज के विज्ञान और वैज्ञानिक शिक्षा से पूर्ण अवगत है, यदि वह चाहे तो विज्ञान का सहारा लेकर देश की गरीबी, भुखमरी और बेरोजगारी से देश को सहज ही मुक्ति दिलवा सकता है परन्तु देखने मे आया है कि युवा-वर्ग अपने पैतृक धन्धे को त्याग कर केवल नौकरी के लिए ही विद्या-अर्जन कर रहा है। बेरोजगारी से छुटकारा पाने का भरसक प्रयत्न करना चाहिए। किसी भी देश की आर्थिक खुशहाली मे अल्प बचतो का महत्त्वपूर्ण योग निहित है।

सांस्कृतिक क्षेत्र में योगदान

संस्कृति देश की प्रगति की सूचक होती है। जिस देश मे संस्कृति नहीं होती, मृतप्राय देश होता है। हमारे देश की संस्कृति भी धीरे धीरे विलुप्त होती जा रही है। आज हम अपने को भारतीय कहलाने में भी अपने भीतर हीनता का

अनुभव करते है। कहना न होगा कि आज का काल सांस्कृतिक संक्रमण-काल है। पुराने मूल्य ध्वस्त हो रहे है तथा नये मूल्य बन नही पा रहे हैं। इस सन्दर्भ में युवा पीढी वर्ग को चाहिये कि वह यह मानकर चले कि हर पुरानी वस्तु त्याज्य नही होती है।

देश की रक्षा में योगदान

हमारा देश जब प्रगति के मार्ग पर बढ रहा है, तो इसकी रक्षा करना भी हमारा कर्त्तव्य है। हमारा युवा वर्ग यदि चाहे तो देश की रक्षा का भार अपने कन्धो पर ले सकता है।

युवा पीढ़ी का अनुशासन के क्षेत्र में योगदान

अनुशासन आज के युग की मुख्य समस्या है। चारो ओर फैली हुई अनुशासन-हीनता मानव-जीवन एवं उसकी संस्कृति को चरती जा रही है। प्रत्येक प्रकार के नैतिक सिद्धान्त एक-एक कर टूटते जा रहे हैं। यह स्थिति समाज के लिए अकल्याणकारी है। युवा-वर्ग के भ्रमित होने तथा अनुशासित न रहने के कारण अनुशासनहीनता की स्थिति सुरसा के मुंह के समान फैल सकती है। ऐसे संक्रान्ति काल मे यह आवश्यक हो गया है कि युवा वर्ग को अनुशासन का महत्त्व और उससे होने वाले शुभ-परिणामो से परिचित कराया जाय। यदि देश का युवा वर्ग अनुशासन की पंक्ति मे खड़ा हो जाय तो प्रत्येक प्रकार के विनाशकारी विघटन से सुलभता-पूर्वक छुटकारा मिल सकता है तथा आये दिन की तोड़-फोड़, षढयन्त्र, उठा-पटक जैसी विनाशकारी परिस्थितियो से पल्ला छूट सकेगा। अतएव आवश्यक हो जाता है कि युवा-वर्ग को कनुशासन मे योग देकर राष्ट्र और संस्कृति के निर्माण का अपूर्ण अध्याय पूर्ण करना चाहिए। युवा-वर्ग हर कार्य मे आशातीत योग दे सकता है।

उपसंहार

युवा पीढ़ी देश की अमूल्य सम्पदा है। उसकी शक्ति को नकारा नहीं जा सकता। देश का भावी इतिहास इसी वर्ग को गढ़ता है और आने वाली समस्याओं तथा जिम्मेदारियों को निभाना है। यदि यह वर्ग अनुशासनबद्ध होकर, भावुकता और कल्पना को त्यागकर यथार्थवादी धरातल पर विचरण करे तो निःसन्देह देश के नव-निर्माण में अपनी अपूर्व भूमिका निभा सकता है। —★—

हिन्दी-साहित्य में नव युगारम्भ

लेखक—सुरेशचन्द्र छात्र
एम.ए. (हिन्दी) द्वितीय वर्ष

पूर्व-मध्यकालीन कृष्ण-काव्य उत्तर-मध्यकाल मे आकर 'शृंगार-काव्य' के रूप मे विकसित हुआ। धीरे-धीरे हिन्दी का काव्य-साहित्य इतना विकसित हो गया कि काव्य की रूप-रेखा निर्धारित करने और संवारने के लिए रीति-ग्रन्थो के निर्माण की आवश्यकता प्रतीत होने लगी और परिणाम स्वरूप 'रीति-काव्य' का सृजन आरम्भ हो गया। रीति-सिद्धान्तों का विवेचन करने के पश्चात् वह शृंगार से ही पूर्ण रहा। साराश यह कि हिन्दी-साहित्य का उत्तर-मध्यकाल एक प्रकार से शृंगार-काव्य का ही युग रहा।

इस काल में जिस कोटि और रुचि का काव्य निर्मित हुआ उसका सामान्य जनता से कोई सम्बन्ध न था; वह उच्च श्रेणी के शासको, जमीदारो और धनवानों तथा कुछ साहित्य-मर्मज्ञो का ही काव्य रहा। जब उत्तर-मध्यकालीन शृंगार काव्य अपनी अन्तिम सीमा पर पहुंच गया तब स्वयं उसके कवि भी ऊब गये। इस काव्य में नीति-काव्य और वीर काव्य का भी अभाव न रहा और वह थोडे ही दिनो मे 'जन-काव्य बन गया। इसी समय जब यह उत्तर-मध्यकालीन शृंगार काव्य अन्तिम सांसे ले रहा था तो भारतीय हिन्दी-साहित्याकाश के क्षितिज पर उदित होने वाले भारतन्दु की प्रकाशमयी किरणों के दर्शन हुए। भारतेन्दु के विशाल व्यक्तित्व ने हिन्दी-साहित्य की सभी शाखाओं-उपशाखाओ को प्रेरणा और शक्ति दी और हिन्दी का जो साहित्य अभी तक केवल काव्य तक ही सीमित था, वह नाटक, निबन्ध, आख्यायिका, उपन्यास, आलोचना आदि विविध अंगों से पूरित हो गया। उनके पश्चात् पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी जी का आगमन हुआ। इन्होंने बाबू हरिश्चन्द्र द्वारा छोड़े अपूर्ण कार्य को पूर्ण किया।

हमने देखा कि हिन्दी-साहित्य का आदिकाल लगभग छह सौ वर्ष तक, पूर्व-मध्य काल लगभग चार सौ वर्ष तक और उत्तरमध्यकाल लगभग ढाई सौ वर्ष तक अपरिवर्तित बना रहा, परन्तु वर्तमान काल निरन्तर परिवर्तन का ही काल रहा। सं० १६२५ के लगभग 'भारतेन्दु-युग' प्रारम्भ हुआ और केवल ३५ वर्ष के पश्चात् ही 'द्विवेदी युग' आरम्भ हो गया। इसके बीस वर्ष के पश्चात् ही 'नवयुग' का सूत्रपात हो गया। इस प्रकार वर्तमानकाल मे हिन्दी-साहित्य ने बार-बार करवटे ली। बार-बार उसकी दिशा और स्वरूप में परिवर्तन हुआ, किन्तु उसका प्रत्येक परिवर्तन नई चेतना और नये जीवन का स्वर्णिम सन्देश लेकर आया।

उत्तर-मध्यकाल में शृंगार-काव्य का मूलाधार प्रेम था, किन्तु शृंगारी कवियो के हाथ पडकर यह प्रेम विकृत होकर 'वासना' के रूप मे परिणित हो गया। अब उसमे कृष्ण काव्य की पवित्रता का तो अभाव था ही, पर वह विशुद्ध दम्पति-प्रेम भी न रह पाया था। कबीर जैसे सन्त कवियो ने जिस प्रेम की उच्चता पर मुग्ध होकर 'सीस देइ लै जाय' कहा था रीतिकाल मे वह मनोरंजन एवं वासनामयी घृणित मनोवृत्ति की तुष्टि का साधन बन गया। भारतेन्दु ने इस प्रेम को वासना के पंक से निकाल कर भगवद्-भक्ति की दिशा मे प्रवाहित किया और राधाकृष्ण को सामान्य नायक-नायिका के स्तर से उठाकर अपने काव्य के प्रेम-सरोवर मे देवत्व के आसन पर आसीन करते हुए कहा—

हम तो मोल लिए या घर के।
दास दास श्री वल्लभ कुल के, चाकर राधावर के।
माता श्री राधिका पिता हरि, वन्धु दास गुनकर के।
हरीचन्द तुम्हरे ही कहावत, नहिं विधि के नहि हर के।

भारतेन्दु का प्रेमकाव्य आगे बढा और वह प्रकृति-प्रेम तथा देश-प्रेम तक पहुँच गया। द्विवेदी-युग में यह प्रेम-धारा और भी विकसित हुई और तत्कालीन अनेक कवियो की प्रकृति-प्रेम और देश-प्रेम आदि विषयक रचनाएं सामने आयी। द्विवेदी-युग के पश्चात् ऐसे युग का अवतरण हुआ जिसमें विभिन्न काव्य-धाराएं प्रवाहित हुई जो वर्तमान काव्य-जगत में छायावादी, रहस्यवादी, प्रगतिवादी आदि धाराओं के नाम से प्रसिद्ध हैं।

हिन्दी-काव्य साहित्य में सर्वद से एक साथ तीन धाराएं प्रवाहित होती रही हैं भक्ति धार्मिक काव्य वीरकाव्य और शृंगार काव्य धारा। आदि काल में इनमें से

वीरकाव्य-धारा, मध्यकाल में भक्ति काव्य-धारा और उत्तरमध्य-काल में शृंगार-काव्यधारा अधिक प्रवाहमयी रही। वर्तमान काल के भारतेन्दु-युग मे भक्ति-काव्य-धारा और शृंगार-काव्य-धारा लगभग समान वेग मे रही। द्विवेदी-युग मे भी लगभग यही स्थिति रही। छायावादी युग मे ऐसे कवियो का भी आविर्भाव हुआ जिन्होने राष्ट्रप्रेम-पूरित वीरकाव्य की रचना कर तत्कालीन राष्ट्रीय जागरण में महत्त्वपूर्ण योग देने का प्रयत्न किया। सामान्यत. पन्त छायावाद के और प्रसाद रहस्यवादी काव्य के प्रवर्तक समझे जाते हैं। राष्ट्र-प्रेम पूरित रचना का सूत्रपात करने का श्रेय पं० माखनलाल चतुर्वेदी 'भारतीय आत्मा' को है। इसके पश्चात् बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', सोहनलाल द्विवेदी आदि ने इस दिशा मे विशेष प्रयत्न किया।

वर्तमान काल मे भक्ति-मूलक काव्य-रचना भी कम नही हुई, पर उसमें हृदय कम और मस्तिष्क अधिक था। जिस समय छायावादी काव्य रहस्यवाद की और उन्मुख हो रहा था उस समय तक छायावाद का अन्त नही हुआ था तभी रहस्यवाद का जन्म हुआ। नवयुग का हिन्दी-काव्य एक साथ ही तीन धाराओ मे प्रवाहित होने लगा। यह युग राष्ट्रीय चेतना का युग था, शृंगार-काव्य का युग न था, पर इसी काल में कुछ कवियो ने ऐसे शृंगार काव्य की भी रचना की जिसकी अश्लीलता के सामने उत्तर मध्यकालीन शृंगार-काव्य भी नतमस्तक हो सकता था।

भारतेन्दु-युग में बहुमुखी साहित्य को जन्म दिया। वह द्विवेदी-युग मे पुष्ट और परिवर्धित हुआ, पर उसके अंग-प्रत्यंग को पूर्णरूपेण पल्लवित और पुष्पित करने का श्रेय 'नवयुग' को ही है। काव्य, नाटक, लघुकथा, निबन्ध, उपन्यास आदि विविध अ गो से सम्बन्धित जितना साहित्य नवयुग मे निर्मित हुआ उतना इसके पूर्व कभी नही हो सका था। यदि हिन्दी-साहित्य का पूर्व-मध्यकाल, जिसे, 'भक्तिकाल' भी कहते हैं, स्वर्णयुग था, तो वर्तमान क ल 'नवयुग' भी उससे किसी प्रकार कम महत्त्वपूर्ण और कम मूल्यवान नही कहा जा सकता।

इस युग में सबसे अधिक विकास सम्भवत: हिन्दी-काव्य का ही हुआ। इस काल में मुक्तक काव्य की अधिकता तो रही ही, प्रबन्ध-काव्य और गीति-काव्य भी कम नही लिखा गया। साकेत, कामायनी, प्रियप्रवास आदि इसी युग के प्रमुख प्रबन्ध काव्य हैं, परन्तु प्रसाद, निराला, महादेवी वर्मा, आदि ने ऐसे गीतिकाव्य की रचना की जो हिन्दी-साहित्य की अमूल्य निधि है। नवयुग का काव्य छायावाद के साथ शृंगारिक शब्दो की अठखेलियां करता आगे बढ़ा और प्रगतिवाद ने उसे नई दिशा दी पर वह जनकाव्य न बन सका। राष्ट्रीय आन्दोलन ने सम्पूर्ण काव्य-

जगत को प्रभावित किया और कवियो को युगवाणी का सन्देश देने के लिए प्रेरित किया। हालावादी बच्चन तक को अपनी मधुशाला का मोह त्यागकर प्रगति के स्वरो मे कहना पड़ा—

> रक्त से सींची गई है,
> राह मन्दिर-मस्जिदो की।
> किन्तु रखना चाहता मै,
> पांव मधु-सिंचित डगर मे॥

राष्ट्रीय चेतना ने, प्रगतिवाद' को जन्म दिया। यह प्रगतिवाद वास्तव में यथार्थवाद का पर्यायवाची था। अब भी भक्तिकाल के राम-कृष्ण और गीतिकाल के राजा रानी, नायक-नातिका आदि सभी थे, पर जन-जीवन की यथार्थवादिता मे इनका कोई स्थान न था। चारो ओर 'उत्थान' और 'मुक्ति' की शंखध्वनि हो रही थी। छायावादी और रहस्यवादी कवियो ने इस ओर मुडकर देखा और उन्हे ऐसा लगा जैसे युग उन्हे पुकार रहा है। वे उसकी पुकार सुनकर दौड पडे, उनके काव्य ने करवट ली। कवियो का एक समूह जयघोष करता आगे बढा। पन्त ने 'युग-वाणी' मे काव्य की जिस दिशा का निर्देश किया, उस दिशा मे उनके काव्य का सतत विकास होता जा रहा था और कुछ अन्य कवि भी इनके मार्ग का अनुसरण करते हुए आगे बढ रहे थे। पन्त ने अपनी रचनाओ द्वारा काव्य के उस क्षितिज की ओर संकेत किया, जो समाजवाद और मार्क्सवाद से आगे बढकर मानव के आध्यात्मिक और प्राकृतिक जीवन की मुक्ति जन-जीवन को वादो के जाल से करके मानवता और विश्वबन्धुत्व का पाठ पढ़ाती है।

काव्य की विविध धाराओ के जन्म और विकास के अतिरिक्त गद्य के विविध अंगो की उल्लेखनीय समृद्धि इस युग की द्वितीय विशेषता है। हरिश्चन्द्र–काल में मुंशी सदासुखलाल ने खडी बोली के जिस गद्य की नीव डाली, वह क्रमशः विकसित होता हुआ आज हमे नाटक, उपन्यास, आलोचना, आख्यायिका, शब्दचित्र आदि के रूप मे दृष्टिगोचर हो रहा है। यह उल्लेखनीय स्थिति हिन्दी-साहित्य के विकास की एक स्वर्णिम शृंखला है। वर्तमान काल के लगभग ६० वर्षों में हिन्दी को बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार गुप्त, प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी वर्मा जैसे कवि; प्रेमचन्द, अज्ञेय, यशपाल और कृष्णचन्द्र जैसे उपन्यासकार और आख्यायिका लेखक; प्रसाद, लक्ष्मीनारायण मिश्र और उपेन्द्रनाथ 'अश्क' जैसे नाटककार; डा० नगेन्द्र, द्विवेदी, शुक्ल जैसे समालोचक और निबन्धकार प्राप्त हुए। इस काल की राजनैतिक, धार्मिक और सामाजिक स्थिति ने भी वर्तमान हिन्दी-साहित्य के इस विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

यद्यपि सन् १७५७ में क्लाइव ने कलकत्ते पर अधिकार कर इस देश में अंग्रेजी-राज्य की नीव डाल दी थी; तथापि अभी अंग्रेजो की सत्ता नगण्य थी। इसके पश्चात् के सौ वर्षों मे अंग्रेजो ने इस देश के एक बड़े भाग पर अपना अधिकार कर लिया। उनकी यह नीति अत्यन्त निन्दनीय थी। जनता अपने मानवीय अधिकारो मे वंचित होकर पूर्ण परतंत्र जीवन बापन करने के लिए विवश थी। इंगलैण्ड की पार्लियामेन्ट भी कपनी के शासन से सन्तुष्ट न थी। इसके पश्चात् भारतीय शासन का अधिकार ईस्ट इंडिया कम्पनी ने अपने हाथ मे ले लिया और इंगलैण्ड की महारानी विक्टोरिया इस देश की भी महारानी समझी जाने लगी। कुछ कवियो ने ईश-वन्दना के पश्चात् विक्टोरिया-वन्दना को अपनी रचना का विषय बनाकर अपने आपको सन्तुष्ट किया। इसी काल में ही सर्वप्रथम भारतीयो को अग्रेजी-शिक्षा, साहित्य और संस्कृति के सम्पर्क मे आने का अवसर मिला।

इससे पूर्व राजाराम मोहनराय जैसे समाज-सुधारक और प्रगतिशील व्यक्ति का आविर्भाव ही चुका था। ये तथा इनके साथ अग्रेजी भाषा को भारतीयो के लिए होना अत्यावश्यक समझते थे तथा लाड विलियम बेंटिक को सती-प्रथा बन्द करने में भी सहयोग देकर सन् १८२६ मे 'ब्रह्म समाज' को भी जन्म दिया जो अब तक बंगाल मे पूर्ण विकसित होकर जनता की महत्त्वपूर्ण सेवा कर रहा था।

राजाराम मोहनराय के पश्चात् केशवचन्द्र सेन ने ब्रह्म-समाज का नेतृत्व ग्रहण किया। इन्ही के प्रयत्न से सन् १८४२ मे अंग्रेजी शासन ने 'बाल-विवाह' को रोकने का कानून बनाया। इसी काल की सुषुप्त भारतीय जनता को जागृति का सन्देश देने वाले महापुरुषो मे स्वामी विवेकानन्द तथा आर्यसमाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द के नाम विशेष उल्लेखनीय है। स्वामी दयानन्द प्रथम भारतीय हैं जिन्होने भारतीय स्वतन्त्रता की आवश्यकता के प्रतिपादन का कार्य आर्य-साहित्य के द्वारा किया। ये स्वदेशी के भी प्रबल समर्थक थे। भारतीय स्वतन्त्रता का जो शंखनाद किया गया उसके ये मूल-प्रणेता थे। स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने 'रामकृष्ण-मिशन' की स्थापना कर समस्त भारतीय धर्मों का समन्वय तथा सामाजिक सुधार करने मे महत्त्वपूर्ण योग दिया। इसके अतिरिक्त भारतेन्दु काल में राष्ट्रीय आन्दोलन के विकास के साथ हिन्दी साहित्य क्रमशः विकसित होता हुआ आगे बढ़ता गया।

अंग्रेजी-शिक्षा और अंग्रेजी-शासन से इस देश का चाहे जो अहित हुआ हो पर यह अस्वीकार नही किया जा सकता कि अंग्रेजी-साहित्य से हमने अनेक बातें सीखी। इसी साहित्य ने हमारे हृदय में राष्ट्र प्रेम का विकास किया। हमने नारी का सम्मान करना सीखा और नई साहित्यिक दृष्टि प्राप्त की। शेक्सपियर, मिल्टन

आदि के काव्य का अध्ययन कर प्रकृति को नई दृष्टि से देखना सीखा। इतना ही ही नहीं हमें आत्मविस्मृति से जागृत करने का श्रेय भी पाश्चात्य साहित्यकारों को कम नहीं है। सर मोनियर विलियम द्वारा अनुवादित 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' को देखकर ही हम इस महान् भारतीय कृति के वास्तविक मूल्य से परिचित हो सके। हम संस्कृत-साहित्य-पयोनिधि से अनेक बहुमूल्यरत्नो की खोज कर भारतीय साहित्य को अलंकृत करने की दिशा मे अग्रसर हुए। नये-नये साहित्य का सृजन होता गया।

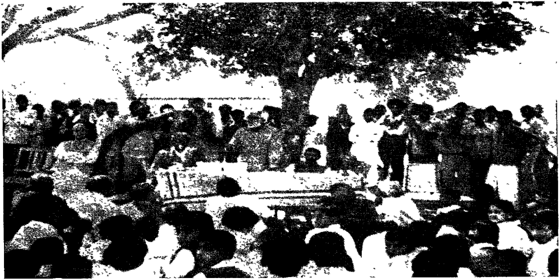
हिन्दी-साहित्य का वर्तमान काल निश्चित ही संघर्ष और क्रान्ति का युग रहा। इस काल मे बार-बार जितने धार्मिक, सामाजिक और राष्ट्रीय आन्दोलन हुए उतने इसके पूर्व के इतिहास मे कभी नही देखे गये। सन् १८८५ मे राष्ट्रीय महासभा (Indian National Congress) का जन्म हुआ। इसी वर्ष वर्तमान हिन्दी-साहित्य के जनक बाबू भारतेन्दु जी गोलोकवासी हुए और आचार्य द्विवेदी और डा० श्यामसुन्दर दास ने उनका उत्तराधिकार ग्रहण कर सं० १९५० में 'नागरी प्रचारिणी सभा' की स्थापना कराई। स० १९६७ मे प्रयाग मे 'हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन' की स्थापना हुई और इस संस्था के द्वारा भी हिन्दी और उसके साहित्य की प्रगति में महत्त्वपूर्ण योग प्राप्त होने लगा। संवत् १९६१ मे रूस-जापान युद्ध छिड गया। इसके पश्चात् संवत् १९७१ में प्रथम विश्वयुद्ध का सूत्र-पात हुआ। युद्ध यूरोप की दो महाशक्तियों के बीच था पर विश्व का कोई भी भाग इससे प्रभावित हुए बिना न रह सका। अभी तक भारतीय साहित्यकारो का ध्यान विशेष रूप से 'आंग्ल साहित्य' की ओर ही आकृष्ट था। इस युद्ध के पश्चात् उनका ध्यान फ्रेंच, जर्मन और रूसी साहित्य की ओर भी गया। परिणामस्वरूप साहित्यकारों की दृष्टि अधिक व्यापक हो गई और उनके द्वारा नई-नई कृतियां प्रकाश में आने लगीं।

इस अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष के साथ ही भारतीय राष्ट्रीय महासभा के नेतृत्व में राष्ट्रीयता का विकास भी होता रहा। प्रथम विश्व-युद्ध के पश्चात् महासभा ने स्वाधीनता की मांग की तो उसके उत्तर में मिला 'रौलट ऐक्ट'। 'जलियानवाला बाग' जैसी पाषाण-हृदय को भी द्रवित करने वाली रक्तरंजित दुर्घटना देखने को विवश होना पडा। संवत् १९७७ के नागपुर अधिवेशन मे 'असहयोग' और विदेशी बहिष्कार' की नीति घोषित कर देनी पडी। इसके पश्चात् होने वाले असहयोग-आन्दोलन के युग में हिन्दी में महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय साहित्य की रचना हुई।

असहयोग-आन्दोलन के पश्चात् 'सविनय अवज्ञा' सत्याग्रह का सूत्रपात हुआ। इन आन्दोलनो से महासभा कुछ आगे बढ़ी, पर इनमे जनता कोई ऐसी

वस्तु न पा सकी। हिन्दी के साहित्यकार भी जनता की इस मनोभावना से प्रभावित हुए और इसी के परिणामस्वरूप 'प्रगतिवादी' साहित्य का जन्म हुआ। प्रगतिवाद मार्क्सवादी विचार-धारा पर आधारित था, अतः हिन्दी के साहित्यकार मार्क्सवाद और गांधीवाद के दो दलो में विभाजित हो गये। इस काल मे विभिन्न विचारधाराओ को लेकर हिन्दी मे महत्त्वपूर्ण साहित्य का निर्माण हुआ।

इस प्रकार हम देखते है कि वर्तमान काल में हिन्दी साहित्य धार्मिक, सामाजिक राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय और अनेक प्रकार की वादगत प्रवृत्तियो से प्रभावित होता हुआ विकास की ओर बढ़ा, फूला और फला। इन विभिन्न प्रवृत्तियो के प्रभाव स्वरूप उसकी गति और रूप में बार-बार परिवर्तन हुआ, पर प्रत्येक परिवर्तन ने उसे एक कदम आगे ही बढ़ाया और आज हम उसे विविध अंग-परिपूरित, पुष्ट एवं समृद्धिशाली देखने मे समर्थ हैं।



ऋषिबोधोत्सव समारोह-कांगड़ी ग्राम

समारोह के संयोजक श्री जितेन्द्र जी हैं - माननीय कुलपति जी भाषण दे रहे हैं।



ऋषिबोधोत्सव समारोह-कांगड़ी ग्राम

उपस्थित जनता माननीय कुलपति जी को अपना दुखसुख सुना रही है।

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की पुण्य भूमि में बोधोत्सव पर्व का उल्लासपूर्ण कार्यक्रम

दिनाक ४-३-८१ को गंगापार पुण्यभूमि कांगड़ी में जरां पर स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने इस विश्वविद्यालय की स्थापना की थी—उसी पवित्र स्थली पर श्री बलभद्र कुमार जी हूजा की प्रेरणा स्वरूप श्री जितेन्द्र जी सहायक मुख्याधिष्ठाता के संयोजकत्व मे सभी शिक्षक एवं शिक्षकेत्तर कर्मचारियो तथा ब्रह्मचारियो ने पहुँचकर ग्राम कागड़ी के निवासियो के साथ यज्ञ किया और ऋषि-बोधोत्सव के महत्व पर प्रकाश डाला। भाषण शृंखला में श्री जितेन्द्र जी सहायक मुख्याधिष्ठाता मे स्वामी दयानन्द जी की जीवनी एवं अनेक शोधपूर्ण संस्मरण सुनाए। श्री बलभद्र कुमार जी हूजा ने भी स्वामी जी के कर्त्तव्यो एवं उनके आदर्शो पर प्रकाश डालते हुए कहा कि सभी आर्यों को उनका पालन करना चाहिये। आज देश के सामने वही चुनौती है कि गरीबी कैसे दूर हो ? जनसंख्या कैसे सीमित हो ? श्री हूजा जी ने सभी युवको से प्रतिज्ञा करवाई कि स्वामी जी के बताये निर्देशो के अनुसार कोई युवक २५वर्ष से पूर्व विवाह नही करेगा। युवको ने स्वतः उनकी बात की प्रतीज्ञा की और २५ वर्ष बाद विवाह करने का व्रत लिया। इस अवसर पर संगढ विद्या सभा द्वारा प्रकाशित ',जीवन-ज्योति" नामक पुस्तक ग्रामीण लोगों में बाटी गई।

इसके बाद स्वामी जी के पूर्व गुरुकुल की इमारत में, जिसे पुण्यभूमि के नाम से पुकारते हैं, खेल कूद हुए और सभी ने सहभोज किया। सहभोज में सभी ने आनन्दित होकर सम्मिलित रूप से भोजन किया।

वनस्पति शास्त्र विभागाध्यक्ष श्री डा०विजयशंकर जी ने ७००वृक्ष आरोपण की योजना बनाई।

इस उत्सव में विश्वविद्यालय के डा० जयदेव जी यज्ञ कराया तथा अनेक उपाध्यायगण सर्वश्री डा० वाजपेयी, चन्द्रशेखर जी त्रिवेदी, जे० एस० सेंगर, सदाशिव भगत, रामप्रसाद, ज्ञानचन्द, प्रिन्सिपल सुरेशचन्द्र त्यागी आदि सम्मिलित हुए। श्री कुलपति जी के नेतृत्व एवं श्री जितेन्द्र जी के संयोजकत्व मे स्वामी जी के द्वारा बनाये हुए यज्ञ कुंड मे यज्ञ किया गया। यह कार्यक्रम साधना शिविर के रूप में परिवर्तित होकर दिनाक ६-३-८१ तक चला। रात्रि को कागड़ी ग्रामवासी रात्रि १-३० बजे तक भजन, प्रवचन एवं अपने स्वामी जी के सस्मरण सुनाया करते थे। एक स्वामी जी के समकक्ष १०१वर्ष की आयु के श्री अर्जुनसिह कागडी निवासी ने स्वामी श्रद्धानन्द जी के साथ जो दिन व्यतीत किये थे उनके संस्मरण सुनाये तथा श्री कुलपति जी ने एक व्यक्ति की ड्यूटी लगाई ताकि सभी संस्मरण लिपि बद्ध किये जा सके। इस साधनाशिविर मे कुछ उपाध्यक्ष एवं कुछ छात्र एवं कर्मचारी भी तीन दिन तक वहीं गगापार पुण्य भूमि मे रहे। आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली के प्रधान श्री सरदारीलाल जी वर्मा ने भी वहा दो दिन बिताये। उन्हे विश्वविद्यालय की ओर से बधाई दी गई।

आयुर्वेद महाविद्यालय के प्रिन्सिपल श्री सुरेशचन्द्र जी शास्त्री ने भी एक दिन शिविर में पधार कर सफाई एवं स्वास्थ्य की दृष्टि से कागड़ी ग्राम की ओर विशेष ध्यान देने का आश्वासन दिया।

यह उल्लेखनीय है कि यह पहला अवसर था जबकि कागड़ी के ग्रामवासियों के साथ सम्पर्क स्थापित करके उनकी सभी समस्याओ पर विचार किया गया। संलग्न चित्र मे ग्रामवासियो की समस्याओ पर गम्भीरतापूर्वक विचार करते हुए माननीय कुलपति महोदय को देख सकते है)

इसी प्रकार उनकी कठिनाइयों को सुनते हुए सहायक मुख्याधिष्ठाता श्री जितेन्द्र जी को एक अन्य चित्र मे देखा जा सकता है। विश्वविद्यालय उक्त दोनो अधिकारियो के प्रति अत्यन्त आभारी रहेगा।

अब विश्वविद्यालय के समस्त छात्रो तथा शिक्षको के मस्तिष्क में यह भावना भली प्रकार व्याप्त हो गई है कि इस विश्वविद्यालय का मूल आधार यही गुरुकुलीयता की भावना है और इसके विकास में ही विश्वविद्यालय का हित निहित है। इस उच्चतम भावना को सर्वाधिक बल प्रदान करने का श्रेय परम सम्माननीय कुलपति महोदय को है उन्होने इसके लिए नवीन दिशाएं प्रदान की हैं।

'गुरुकुलीयता' केवल ऊपरी दिखावे में न होकर तदनुसार आचरण करने में है। 'गुरुकुलीयता का जहा एक अभिप्राय था संस्कृत-वेद शिक्षा एवं आर्यत्व की भावना का विकास वही उसका एक उद्देश्य "विश्व को आर्य बनाना" (कृण्वन्तो विश्वमार्यम्) भी रहा हैं। ठीक उसी प्रकार जहाँ 'वेद शब्द का एक अर्थ 'वेदग्रन्थ' है, वही उसका दूसरा अर्थ "ज्ञान" भी है। अस्तु 'विश्व को आर्य बनाना' तथा उसके लिए ज्ञान की उपासना के लिए क्षेत्र तैयार करना' ही 'गुरुकुलीयता' का लक्ष्य रहा है। "विश्वविद्यालय" शब्द भी व्यापकता एवं अत्यधिक उदारता की ओर संकेत करता है। गुरुकुल कागड़ी केसाथ इसके सस्थापक स्वामी श्रद्धानन्द ने "विश्वविद्यालय" शब्द को इसी उद्देश्य से सम्मिलित किया था कि किसी दिन यह संस्था वास्तविक विश्वविद्यालय कारू प धारण कर सकेगी तथा ज्ञान के विविध क्षेत्र इसमे सम्मिलित किए जा सकेंगे। गुरुकुल शब्द का निर्माण करने वाले 'गुरु' शब्द का महत्त्व बतलाते हुए निम्नाकित उक्ति को प्रस्तुत किया जा सकता है—

को वा गुरुर्योहि हितोपदिष्टा,
शिष्यस्तु को यो गुरुभक्त एव।

(मणिरत्नमाला)

(अर्थात् गुरु कौन है ? जो हित का उपदेश करे तथा शिष्य कौन है ? जो गुरु का भक्त हो)

संसार में सुयोग्य गुरु तथा भक्त शिष्य दोनों की ही न्यूनता है। उन्हें क्रमशः प्रश्रय देना तथा उत्पन्न करना गुरुकुल का लक्ष्य रहा है और यही एक ऐसी विशेषता है जिसके कारण आज भी इस संस्था का मूल्य स्थापित है। 'कुल' का अर्थ 'परिवार' है अतः पारिवारिकता की भावना भी गुरुकुलीयता का एक अंग है।

इसी भावना को एक बार पुनः नया रूप देकर उसे ऊंचा उठाने की महती आवश्यकता का अनुभव विद्वान कुलपति जी ने किया है। उन्हें समर्थन मिलता जा रहा है और वे इसे अवश्य नया रूप प्रदान कर सकेंगे।

—सम्पादक

विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग में विद्वानों के व्याख्यान

दिनांक १७-३-८१ को विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग में हिन्दी के शीर्षस्थ विद्वान डा० उदयभानुसिंह जी पी०एच०डी०, डी० लिट० (प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय) का एक व्याख्यान हुआ।

विद्वान आलोचक ने हिन्दी के दो महाकाव्यो (रामचरितमानस एवं कामायनी) को लेकर साहित्य के विविध पक्षो को बडे कौशल के साथ श्रोताओ के समक्ष प्रस्तुत किया तथा सभी को मंत्रमुग्ध कर दिया।

डा० चन्द्रभानु 'अकिंचन' (कुलसचिव) ने अपने भाषण में परम विद्वान अतिथि का स्वागत किया तथा अपनी पीयूषवर्षी गिरा से सभी को आनन्दित कर दिया।

अन्त मे गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष डा० ए०पी० वाजपेयी पी-एच०डी०, डी०लिट० ने सम्मान्य अतिथि एवं उपस्थित श्रोताओ को धन्यवाद दिया तथा उनके प्रति आभार व्यक्त किया। उस समय हिन्दी विभाग के प्रवक्ताओ तथा छात्रो के अतिरिक्त अनेक अन्य विभागो के श्रोतागण भी उपस्थित थे।

कुछ अन्य विद्वानो के व्याख्यान होने वाले हैं। इनमें डा० केसरीनारायण जी शुक्ल एम०ए० डी०लिट० का नाम प्रमुख है। आप गोरखपुर तथा लखनऊ विश्वविद्यालयो मे हिन्दी विभागाध्यक्ष रहे तथा एक दो वर्षों तक रूस मे भी रहे। आपके व्याख्यान का सारांश भी 'प्रहलाद' पत्रिका के आगामी अंक में प्रस्तुत किया जा सकेगा।

इस कार्यक्रम में सर्वाधिक सहायता सम्माननीय श्री जितेन्द्र जी (सहायक मुख्यधिष्ठाता), वित्त अधिकारी माननीय थापर जी तथा कुलसचिव डा० अकिंचन जी ने की, जिसको शब्दो में वर्णन कर पाना कठिन है। उनकी सहायता के बिना उक्त कार्यक्रम की कल्पना ही नही की जा सकती। ★★★

सम्पादकीय वक्तव्य

पाठकवृन्द !

'प्रह्लाद' पत्रिका (त्रैमासिक) का प्रथम अंक आपके समक्ष प्रस्तुत है। यह विश्वविद्यालय-स्तर की साहित्यिक पत्रिका है। इसके निर्माण मे माननीय कुलपति महोदय की प्रेरणा ही प्रमुख है। उन्ही का आदेश शिरोधार्य करके मैंने इसके सम्पादन का भार स्वीकार किया था। प्रारम्भ मे इसी नाम की पत्रिका निकल चुकी है, परन्तु वह माध्यमिक स्तर की पत्रिका थी। प्रस्तुत पत्रिका का स्तर अनेक विश्वविद्यालयो से प्रकाशित होने वाली हिन्दी की शोध-पत्रिकाओ के समान है। इसके साथ यह भी निवेदन करना है कि प्रस्तुत अंक असाधारण त्वरा में प्रकाशित हो रहा है अस्तु सम्भव है कुछ न्यूनताएं रह गई हों परन्तु इसके अगले संस्करणों मे उनकी पूर्ति अवश्य कर ली जायगी।

इस पत्रिका के नामकरण पर विचार कर लेना असंगत न होगा। प्रह्लाद की कथा घर-घर में प्रचलित है परन्तु उसका ऐतिहासिक विवरण अभी तक भी उपलब्ध नही हो सका है। ऐसी स्थिति मे प्रह्लाद के व्यक्तित्व पर विचार करने के लिए पर्याप्त सामग्री का अभाव है। यत्र तत्र काव्यग्रन्थों में प्रसंगवशात् प्रह्लाद के नाम का उल्लेख मिलता है, यथा—

प्रभु सत्य करी प्रहलाद गिरा,
प्रगटे नरकेहरि खंभ महाँ।
(तुलसी : कवितावली : उत्तरकांड : ८)

प्रह्लाद—विषाद—निवारन, बारन—
तारन, मीत अकारन को।
(वही : ६)

उससे केवल यह प्रकट होता है कि प्रहलाद उच्च कोटि का भगवद्भक्त रहा होगा। इसे दृष्टि मे रखते हुए प्रहलाद को व्यक्तिवाचक संज्ञा के स्थान पर भाववाचक संज्ञा मानकर चलना अधिक उपयुक्त होगा। 'प्रहलाद' शब्द स्वयं में भी इतना समर्थ है कि इसके अर्थ की परिधि के भीतर सर्वोच्च मानवीय गुणो का समावेश हो जाता है। महाकवि कालिदास द्वारा भी 'प्रहलाद' शब्द का प्रयोग भाववाचक संज्ञा के रूप मे ही किया गया है, यथा—

यथा प्रह्लादनाच्चन्द्रः प्रतापात्तपनो यथा।
तथैव सोऽभूदन्वर्थो राजा प्रकृतिरञ्जनात् ॥

(रघुवंश/४/१२)

यहां कवि का आशय यह है कि चूंकि चन्द्रमा का दर्शन करने से चित्त में 'प्रहलाद' होता है और केवल इसीलिए वह चन्द्रमा कहलाने का अधिकारी है अस्तु 'प्रहलाद' उसे कहेगे जिसको देखकर या सुनकर चित्त का आनन्द बढ़ जाय अथवा चित्त का प्रसादन हो। "प्रकर्षेण आल्हादयति इति प्रहलादः" मे भी यही भाव निहित है अस्तु इस पत्रिका मे उसी अर्थ को ग्रहण किया गया है।

एक अन्य उल्लेखनीय बात यह है कि जिस क्षेत्र में प्रहलाद का जन्म हुआ था और जहां उसके पिता हिरण्यकश्यप का राज्य था उस जिले की बोली की एक विलक्षणता यह है कि आज तक भी उसमें 'राम' शब्द के पहले अक्षर 'र' का उच्चारण नहीं किया जाता। उदाहरणार्थ वहां 'हरदोई' का उच्चारण 'हद्दोई' 'मिरच' का 'मिच्च' तथा 'उरद' का 'उद्द' जैसा किया जाता है अस्तु ऐतिहासिक शोधकर्तागण वहां की आवश्यक सामग्री को एकत्र करके प्रहलाद के वंश का प्रामाणिक इतिहास लिख सकते है। तत्पश्चात् वहां की भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन भी किया जा सकेगा।

पत्रिका के व्ययार्थ आर्थिक स्वीकृति प्रदान करने के लिए मैं परमसम्माननीय कुलपति महोदय का तो आभारी हूं ही साथ ही वर्तमान वित्त अधिकारी श्री बी० एम० थापर की भी विशेष रूप से कृतज्ञ हूं क्योंकि उनकी कृपा के बिना यह कार्य कदापि सम्पन्न न हो पाता। सहायक मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल कांगड़ी (श्री जितेन्द्र जी) का भी मैं अत्यन्त आभारी हूं जिनसे पत्रिका के लिए आवश्यक सामग्री समय पर प्राप्त हो सकी है। इसके अतिरिक्त कुलसचिव जी, उपकुलपति कानूनी परामर्शदाता सचिव जी, आचार्य जी, प्रिंसिपल शर्मा जी तथा त्यागी जी का भी कृतज्ञ हूं। मैं डा० उदयभानुसिंह जी तथा डा० केसरी नारायण जी शुक्ल के प्रति भी अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूं।

पत्रिका के लिए सामग्री सकलन मे मेरे विभाग के सहयोगियो के अतिरिक्त अन्य विभागो के अध्यक्ष एव प्रवक्ताओ ने भी मेरी सहायता की है। मै उन सभी का आभारी हू ।

मै विश्वविद्यालय के उन छात्रो एव शिक्षको को विशेष रूप से धन्यवाद देता हू जिन्होने पत्रिका के लिए सामग्री प्रदान की है। पत्रिका का आकार छोटा होने के कारण कुछ सामग्री प्रकाशित होने से रह गई है उसे अगले अक मे यथासम्भव प्रकाशित करने की चेष्टा की जायगी।

मै महालक्ष्मी प्रिण्टर्स एण्ड स्टेशनर्स, ज्वालापुर तथा श्री एस० के० पालीवाल के प्रति भी आभार प्रकट करता हू जिन्होने प्रिटिग तथा आवरण पृष्ठ के निर्माण मे बडी सहायता की है।

इन शब्दो के साथ यह पत्रिका आपके कर-कमलो मे इस आशा के साथ प्रेषित कर रहा हू कि आप इसे अपनी ही वस्तु समझकर अपनायेगे। आपके द्वारा दिए गए सुझावो एव सशोधनो का स्वागत किया जायगा और यदि आवश्यक हुआ तो उन्हे प्रकाशित भी किया जायगा।

—*सम्पादक*

—★—